महामायातन्त्रम्

(संस्कृत मूल, गुणवती टीका एवं हिन्दी अनुवाद सहित)

Mahāmāyātantram



काशीनाथ न्यौपाने

Kashinath Nyaupane



INDIAN MIND

Mahāmāyātantram

(Sanskrit Text with Hindi Translation)

Translated By
Kashinath Nyaupane



INDIAN
MIND

महामायातन्त्रम्

(संस्कृत मूल, गुणवती टीका एवं हिन्दी अनुवाद सहित)

सम्पादन एवं हिन्दी अनुवाद

काशीनाथ न्यौपाने



First Edition 2016

Published by **Indian Mind**, Varanasi.
website : www.indianmind.co.in
e-mail : indianmindindia@gmail.com

Sole Distributor
* **Indica Books,** D, 40/18, Godowlia,
  Varanasi 221 001 (U.P.)
  India
* **Indica Books,** Assi Ghat,
  Varanasi 221 001 (U.P.)
  India
* **Indian Mind,** 301, D.D.A. Flats,
  Badarpur, New Delhi - 110044.

e-mail : indicabooksindia@gmail.com
website : www.indicabooks.com

ISBN : 81-86117-27-X

Designed by : Deepraj Jaiswal

Printed in India by
Dee Gee Printers
Varanasi. Cell :91+9935408247

विषयसूची

प्रकाशकीय

६४ तन्त्रों के परिगणना में पहला नाम महामाया तन्त्र का है। इससे इसकी महत्ता का बोध स्वतः हो जाता है। इस महनीय ग्रन्थ का प्रकाशन, वह भी रत्नाकर शान्ति कृत गुणवती टीका के साथ करने का जो सौभाग्य हमें मिला है इससे मैं आह्लादित हुआ हूँ।

इस ग्रन्थ के अनेक अध्येता देश विदेशों में हैं। नेपाल संस्कृत विश्वविद्यालय के बौद्ध दर्शन विभाग के आचार्य परीक्षा में यह पुस्तक रखा गया है। इससे भी इसका लोकोत्तर महत्त्व प्रकट होता है। अतः हिन्दी अनुवाद के साथ इसका प्रकाशन अत्यन्त उपयोगी समझकर प्रो० डा० काशीनाथ न्यौपाने ने इसका हिन्दी अनुवाद कर हमें प्रकाशन के लिए उपलब्ध कराया है। हम इनके आभारी हैं और आशा करते हैं भविष्य में वे तन्त्र के क्षेत्र में और भी काम करते रहेंगे, जिससे पाठकों के लिए हम नवीन कृतियाँ दे सकें।

दिलीप कुमार
इण्डिका बुक्स एवं इण्डियन माइण्ड

दिनांक २०१६, ७ मार्च
शिवरात्रि

पूर्वपीठिका

राष्ट्रीय अभिलेखालय काठमाण्डु, नेपाल में अनेक बौद्ध तन्त्रों के ग्रन्थ अब भी असम्पादित अवस्था में हैं। उनमें से यह महामाया तन्त्र भी है जो इसकी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण टीका के साथ लगत सं० ५-१०७ में है। इसी प्रकार इसकी एक प्रति मेरे व्यक्तिगत संग्रह में भी है जो विगत १० वर्ष पूर्व मुझे उपलब्ध हुई थी। इन दोनों हस्तलिखित ग्रन्थों के आधार पर मैंने इस महनीय ग्रन्थ का सम्पादन किया है। साथ ही बिना हिन्दी अनुवाद के यह उतना उपयोगी नहीं होगा यह विचार कर फिर इसका हिन्दी अनुवाद भी करके अब हम सहृदय पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर रहें हैं। आशा है पाठकगण अन्य तन्त्र ग्रन्थों की भाँति इसे भी अपना स्नेह का पात्र बनायेंगे।

इस ग्रन्थ के टीका के साथ मूल भाग का सम्पादन कर प्रो० सम्दोङ रिनपोछे तथा प्रो० व्रजबल्लभ द्विवेदी ने सन् १९९२ में सारनाथ, वाराणसी से प्रकाशित किया है। उन्होंने भी नेपाली हस्तलिखित का ही प्रयोग किया है। इस सम्पादन में मैंने भी उक्त प्रकाशित ग्रन्थ से यथेष्ट सहयोग लिया है। अतः मैं उन दोनों सम्पादकों को आभार व्यक्त करता हूँ।

महामाया का उल्लेख

'महामाया' इस नाम का उल्लेख बहुत ग्रन्थकारों ने किया है। 'नित्याषोडशिकार्णव' के अनुसार ६४ प्रकार के तन्त्र ग्रन्थ हैं। उनमें से सर्वप्रथम इसी का नाम उल्लेख हुआ है।

महामाया शम्बरञ्च योगिनी जालशम्बरम् १/१४-२१

इसके अनुसार महामाया का नाम सर्वप्रथम लिया गया है। यह महामाया

अपने आप में पूर्ण तन्त्र ग्रन्थ नहीं है। इसके टीकाकार के अनुसार यह मुक्तक है। यह श्री वज्रशेखर तन्त्र का एक भाग है। जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होने से प्राचीन काल से ही पृथक् रूप में इसकी चर्चा होती रही है।

तन्त्र तीन प्रकार के हैं – हेतु तन्त्र, फल तन्त्र तथा उपाय तन्त्र। इस तन्त्र में संक्षेप में हेतु, फल और उपाय तीनों का वर्णन है। यह वज्रडाकिनी नामक परम गुह्य तन्त्र है। वही परिणति में महामाया हो जाती है। इसीलिए इसका नाम महामाया हुआ है।

डै विहायसगमने धातुरत्र विकल्पितः।
सर्वाकाशचरी सिद्धिर्डाकिनीति प्रसिद्ध्यति॥

यहाँ बुद्धडाकिनी, वज्रडाकिनी, रत्नडाकिनी, पद्मडाकिनी और विश्वडाकिनी देवियाँ हैं। वे ही मूल तत्त्व हैं। इन्हीं से समग्र जगत् व्याप्त है।

इस ग्रन्थ में निम्नविषयों का वर्णन ही मूल महामाया तन्त्र और उसकी टीका रत्नाकर शान्ति विरचित में किया गया है। प्रथम निर्देश में वर्णित विषय ये हैं –

मङ्गलाचरण। महामाया तन्त्र क्यों कहा गया है। तन्त्रों की तीन प्रकारें। तन्त्र शब्द की व्युत्पत्ति। नामार्थ निर्देश। महामाया का स्वरूप। तन्त्र की गोपनीयता। कृत्य का लाभ। चित्त की प्रकृति प्रभास्वरता। बोधि का कारण। पाँच ज्ञान। पाँच काय। उपाय। अक्षर स्वरूप। अक्षरों की अनुष्ठान विधि। वज्रसत्त्व का स्वरूप विवेचन। वीर शब्द का अर्थ। वीर की स्थिति का निरूपण। चार चक्रों में ध्यान की विधि। सभी धर्म बुद्धमय हैं का वर्णन। जाप निर्देश–भावनानुसारी। ज्ञान और देवताओं के प्रभाव और स्वभाव का निरूपण।

इसी प्रकार द्वितीय निर्देश में विशेष वर्णित विषय हैं –

गुह्य अक्षर का निरूपण। उसके जप की विधि। निःश्वास का निरूपण। तीन प्रकार के योगों का वर्णन। विद्याक्षर और उसका प्रयोग। वश्य प्रयोग। आकर्षण। पिण्डाकृष्टि का वर्णन। वीर में चित्त की स्थिरता आदि विषय इसमें हैं।

इसी प्रकार तृतीय निर्देश में निम्न विषय हैं –

अन्य द्रव्यों की चिन्ता। द्रव्य क्या हैं? चित्तपद्म के साधना की विधि। बुद्धविम्ब का स्वरूप निरूपण। मुखों के वर्णों की चिन्तना। देवियों के चिह्न। भगवान् के स्थान चिह्न। ज्वालाओं की प्रशंसा। बोधिसत्त्वों के ज्ञान का वर्णन। तन्त्र के ग्रहण से होने वाले लाभ आदि का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

इस प्रकार यह तन्त्र ग्रन्थ पूर्ण होता है। इस ग्रन्थ के अध्ययन एवं मनन से तन्त्र शास्त्र की प्रकृति और उसके स्वरूप का बोध स्वतः हो जाता है। अतः यह छोटा होने पर भी अत्यन्त उपकारक है।

टीका और टीकाकार

महामाया ग्रन्थ अत्यन्त संक्षिप्त है। बिना टीका के इसके रहस्य को समझना कठिन है। सौभाग्य से इस ग्रन्थ के ऊपर अत्यन्त प्रसिद्ध एवं कलिकाल-रहस्यवेत्ता श्री रत्नाकर शान्ति ने एक गंभीर, प्रसन्न पदों से युक्त, अत्यन्त अन्वर्थ नाम की गुणवती टीका की रचना की है। इसी टीका के कारण ही यह ग्रन्थ बोध्य हो गया है। अन्यथा इसके गूढ अर्थों को समझना कठिन था। अतः यहाँ सम्पादन के क्रम में इस टीका को रखा गया है।

इसी प्रकार अनुवाद केवल मूल का नहीं है। बिना इस टीका के रहस्यों को नहीं खोला जा सकता है अतः टीका का भी हिन्दी सारांश कर दिया गया है। आशा है पाठकगण इससे लाभान्वित होंगे।

दिनांक २०१६, ७ मार्च
शिवरात्रि

सम्पादक एवं अनुवादक
काशीनाथ न्यौपाने
नेपाल संस्कृत विश्वविद्यालय, वाल्मीकि क्यैम्पस,
प्रदर्शनी मार्ग, काठमाण्डू नेपाल।
Email: kashinathguru@gmail.com

महामायातन्त्रम्

रत्नाकर शान्तिकृत-गुणवतीटीकासहितम्

प्रथमो निर्देशः

॥ नमः श्रीवज्रडाकिनीभ्यः॥

वज्र डाकिनियों को नमस्कार है।

नमः श्रीवज्रडाकिन्यै डाकिनीचक्रवर्तिने।
पञ्चज्ञानत्रिकायाय जगत्त्राणविधायिने॥ १ ॥

डाकिनी चक्रवर्ती, संसार का त्राण करने वाली, पाँच ज्ञानों की दाता और त्रिकाय स्वरूप वज्रडाकिनी को नमस्कार है॥ १ ॥

याश्चैता वज्रडाकिन्यः परिकल्पितबन्धनान्।
विच्छिद्य लोककार्येषु प्रविष्टास्तद्धिते रताः॥ २ ॥

वे जो वज्रडाकिनियाँ हैं, समस्त परिकल्पित सांसारिक बन्धनों से जगत् को त्राण करने के लिए लौकिक कार्यों में प्रविष्ट हुई हैं और उसके हित के लिए निरन्तर लगी हुई हैं॥ २ ॥

अथातो वज्रडाकिनीनां गुह्येश्वरीणां
परमगुप्तं गुह्यं[1] नाम तन्त्रं प्रवक्ष्ये॥ ३ ॥

अब, मैं परम गुह्येश्वरी, वज्रडाकिनियों के परम रहस्यमय गुप्त तन्त्र के रहस्य को बताने जा रहा हूँ॥ ३ ॥

नमः श्री भूतडामराय[2]

---

१. गुह्यम् इत्यपि पाठः ख पुस्तके लभ्यते।

२. नमः इति ख पुस्तके नास्ति।

श्रीभूतडामर को नमस्कार है।

कायाः कृता येन जगद्धितार्थं कुलानि देव्यः कुलनायकाश्च।
तन्मूर्त्तिमुद्रानुसृतैकतत्त्वः स मृग्यतां वज्रधरः शिवाय॥

जिसने जगत् के हित के लिए कायों का निर्माण किया है। और कुलों का निर्माण, देवियों का तथा कुल नायकों का भी निर्माण किया है। उसकी मूर्ति, मुद्रा, मन्त्र आदियों का मूल स्वरूप ही तत्त्व है, वह तत्त्व वज्रधर ही है अपने कल्याण के लिए उनका पता लगाना चाहिए।

अतिलघु महामायातन्त्रं गिरा गुरुणाऽर्थतो
जगति कतिचित् तस्येदानीं निरन्तरवेदिनः।
प्रतिपदमतस्तत्र ज्ञानं शुचि श्रुतशालिनां
निभृतसुलभं लोके कर्तुं ममैष परिश्रमः॥

यह महामाया तन्त्र शब्दों से तो छोटा (लघु) है किन्तु अर्थ के दृष्टि से भारी (बड़ा) है। संसार में अनेक लोग हैं इसके जानकार किन्तु अन्य इसे ठीक से नहीं जानते हैं अतः इस ग्रन्थ के प्रत्येक महत्त्वपूर्ण पद का अर्थ करके बुद्धशासन के श्रोताओं एवं साधकों के कल्याणार्थ या उनके सहायता के लिए ही मैं रत्नाकरशान्ति यह श्रम कर रहा हूँ।

विविधः सुगतेन बोधिमार्गः कथितो भिन्नरुचिं विलोक्य लोकम्।
रुचितो बहवः स्वयं प्रवृत्ता विवृतिर्मे गुणवत्यथोऽत्र कर्म॥

भिन्न-भिन्न लोगों के रूचि के आधार पर भगवान् सुगत ने भिन्न-भिन्न बोधि के मार्गों का निरूपण किया है अतः अपने-अपने रूचियों के अनुसार स्वयं ही प्रवृत्त हुए हैं और होते ही रहेंगे। अतएव मैं भी इस ग्रन्थ के विवृति के लिए जो गुणवती है और यह मेरा कर्म भी गुणयुक्त ही है ऐसा मैं समझता हूँ।

अथेत्यादि। नैतत् तन्त्रं मुक्तकम्, किं तर्हि तन्त्रान्तरैः सम्प्रयुक्तम्। तस्मादयमथशब्दः पूर्वतन्त्रापेक्षयाऽऽनन्तर्यमस्य तन्त्रस्य द्योतयति। अत एव नास्यादौ निदानवाक्यमेवं मयेत्यादिकं प्रयुक्तम्, प्रागेव प्रयुक्तत्वात्। तद्यथा श्रीवज्रशेखरे।

यह मूल तन्त्र नहीं है किन्तु मुक्तक है। क्योंकि वज्रशेखर तन्त्र का एक भाग के रूप में इस महामाया तन्त्र का विकास हुआ है। इसीलिए एवं मयाश्रुतम् इस प्रकार के निदान वाक्य यहाँ नहीं हैं। क्योंकि पहले ही इसका प्रयोग होने से।

अत इति। यस्मादतिसंक्षेपरुचीनामिदमेव बोधेराशु साधनम्, अतः प्रवक्ष्ये इति सम्बन्धः। प्रविभज्य वक्ष्ये प्रवक्ष्ये। तन्त्रमिति प्रबन्धम्। त्रिविधं तन्त्रम्-हेतुतन्त्रम्, फलतन्त्रम्, उपायतन्त्रं च। तत्र प्रकृतिप्रभास्वरमनादिनिधनं चित्तं बोधिचित्तम्, सहेतुस्तद्बीजम्। कस्य बीजम्? बोधेः। सम्यक्संबोधिः फलम्, निरुत्तरफलत्वात्। सा पुनस्तस्यैव प्रकृतिप्रभास्वरस्य चित्तस्यागन्तुकसर्वावरणक्षयलक्षणा विशुद्धिः। सा बुद्धानां धर्मकायः, संभोगनिर्माणकायसंगृहीतानामनन्तानां बुद्धधर्माणामाश्रय इत्यर्थः। सैव बुद्धानां बोधिर्धर्मकायो महावज्रधरपदम्। तस्माद्धेतोस्तस्य फलस्य परिनिष्पत्तये साधनमुपायः। स पुनर्बोधिसत्त्वानां त्रिकल्पासंख्येयभावितः सपरिकरो मार्गः। मन्त्रयानेऽत्र तस्यैवातिमहतो बोधिमार्गस्य संक्षेपरूपः, क्षिप्रतरं सुखतरं च बोधिसाधनो मण्डलचक्राद्याकारः सपरिकरो मार्ग उपायः। एतान् हेतुफलोपायानधिकृत्य ये देशनाप्रबन्धास्ते यथाक्रमं हेतुतन्त्रं फलतन्त्रमुपायतन्त्रं वा। तदेतत्त्रिविधं तन्त्रं प्रवक्ष्ये।

अब यहाँ प्रश्न उठता है क्यों इस ग्रन्थ का पृथक् प्रकाशन किया गया है? यह तो वज्रशेखर आदि तन्त्रों में ही वर्णित होना चाहिए था? इसी प्रश्न को ध्यान में रखकर मूल में कहा गया है अथातः। अब, क्योंकि अत्यन्त संक्षिप्त रुचिवालों के लिए अथवा संक्षेप में गंभीर रुचिवाले साधकों के ज्ञान के लिए, तत्काल विषय में प्रवेश किया जा सके इसी उद्देश्य के साथ इसका प्रकाशन किया जाना ही उचित है। इसीलिए पृथक् ग्रन्थ के रूप में इसे प्रकाशित किया गया है। तन्त्र तीन प्रकार के होते हैं।

१- हेतु तन्त्र

२- फल तन्त्र

३- उपाय तन्त्र।

प्रकृति से ही प्रभास्वर एवं अनादि निधन (आदि अन्त रहित) चित्त ही बोधिचित्त है। कारण सहित उसका बीज है। किसका बीज? बोधि का। सम्यक् सम्बोधि ही फल है, उससे बढ़कर अन्य कोई फल है ही नहीं। वह बोधि उसी प्रकृति प्रभास्वर चित्त के आगन्तुक सभी आवरणों के क्षय से विशुद्ध है। वही बुद्धों का धर्मकाय है। क्योंकि संभोगकाय तथा निर्माणकायों में संगृहीत अनन्त बुद्ध धर्मों का आश्रय होने से। वही बोधि=धर्मकाय महावज्रधर पद भी है। अतः उस फल के प्राप्ति के लिए साधन ही उपाय है।

तत्तर्हि तन्त्रं किं नामेत्याह--परमगुप्तं[1] नामेति। नामशब्दोऽव्ययः प्रसिद्धौ वर्तते। परमगुप्तह्य मित्यनेन नाम्ना प्रसिद्धमित्यर्थः। केषां परमगुप्तह्य मित्याह--वज्रडाकिनीनाम्। अतश्च साकल्येन वज्रडाकिनीपरमगुह्यं नामेदं तन्त्रम्, पूर्वपदलोपात्तु परमगुह्यं नाम, सत्यभामा भामेति यथा। डै वैहायसगमने (९६८ भ्वा), ऐकारस्यात्वम्। डानं डाः, आकाशगमनमित्यर्थः। डाशब्दात् तृतीया। अक अग कुटिलायां गतौ (७९२-७९३ भ्वा)। अत्र सर्वतो गमनं कुटिला गतिः। डा अकितुं शीलमस्या इति डाकिनी, सा ह्याकाशकोटीनियुतशतसहस्त्रैर्युगपत् सर्वतो गामिनीत्यर्थः। तथा चोक्तम्--

डै वैहायसगमने धातुरत्र विकल्पितः।
सर्वाकाशचर री सिद्धिडाकिनीति प्रसिद्ध्यति॥ इति।

वज्रग्रहणं बाह्यडाकिनीव्यवच्छेदार्थम्। वज्रमशनिः, अप्रपञ्चज्ञानमयत्वात्, डाकिन्यश्चेति वज्रडाकिन्यः। तासां कीदृशीनामित्याह-गुह्येश्वरीणामिति। अत्र पञ्चकुलानि पञ्चगुह्यानि, तेषामीश्वर्यः सृष्टिसंहारकारिकाः। तत्र तथागतकुलस्येश्वरी बुद्धडाकिनी, वज्रकुलस्य वज्रडाकिनी, मणिकुलस्य रत्नडाकिनी, पद्मकुलस्य पद्मडाकिनी, कर्मकुलस्येश्वरी विश्वडाकिनी। तासामपीश्वरी महामाया। यस्मादसौ तासां गुह्यातिगुह्यानां गुह्यम्, तस्मात् परमगुह्यम्। तदभिधायकं तन्त्रमपि

---

१. परमगुह्यम् इति ख पुस्तके।

तथोच्यते। सीताहरणं काव्यमिति यथा॥ ३ ॥

वह तन्त्र क्या है? वह पर गुह्य कहा गया है। क्यों और किसका परम गुह्य है? – वज्रडाकिनियों का परम गुह्य है। अतः संक्षेप में वज्रडाकिनी परम गुह्य नामक यह तन्त्र है। डै वैहायस् गमने इस धातु से यह डाकिनी शब्द निष्पन्न हुआ है अतः समग्र आकाश में विचरण और एक साथ सभी जगह पहुँचने से भी डाकिनी कहा गया है। और वह वज्रडाकिनी भी है। वज्रपद से अन्य डाकिनियों का निषेध हो जाता है, वे पाँच डाकिनियाँ हैं। और गुह्येश्वरी भी हैं। यहाँ पाँच कुल निर्दिष्ट हुए हैं। उनकी ईश्वरी होने से सृष्टि-संहार कारक हैं। तथागत कुल की ईश्वरी बुद्धडाकिनी है। वज्रकुल की वज्रडाकिनी, मणिकुल की रत्नडाकिनी, पद्मकुल की पद्मडाकिनी और कर्मकुल की ईश्वरी विश्वडाकिनी है। उसकी भी ईश्वरी महामाया है। उन गुह्यों की भी गुह्य होने से परम गुह्य है॥ ३ ॥

यथा व्याप्तमिदं सर्वं ब्रह्माण्डं सचराचरम्।
उत्पत्तिः सर्वदेवानां ब्रह्मादीनां महर्द्धिका॥ ४ ॥

जिससे समग्र चराचर एवं ब्रह्माण्ड व्याप्त हुआ है साथ ही जो देवताओं की उत्पत्ति कारिका हैं, महाप्रभाव युक्त होने से ब्रह्मा आदि का उत्पत्ति स्थान भी होने से यह महामाया कहलाती है॥ ४ ॥

इममेव नामार्थं दर्शयितुमाह--यथेत्यादि। बृह बृहि वृद्धौ (७३५-७३६ भ्वा), मनिन्। नैरुक्तो वर्णविकारः। एवं ब्रह्मेति भवति। इह तु सर्वलोकगुरुत्वात् सर्वतो वृद्धा इति ब्रह्माणस्तथागताः संभोगनिर्माण-कायसंगृहीताः। तेषामण्डमुत्पत्तिस्थानम्, धर्मकाय इत्यर्थः। अथवा मोक्षातिशयत्वाद् ब्रह्म च तत् कायद्वयोत्पत्तिस्थानत्वादण्डश्चेति ब्रह्माण्डं धर्मकाय इत्यर्थः। परिशुद्धेषु बुद्धक्षेत्रेषु यः सत्त्वलोकः, सोऽत्र चरः, यस्तेषु भाजनलोकः, सोऽत्राऽचरः। सह ताभ्यां वर्तत इति सचराचर ब्रह्माण्डम्। तद्यया व्याप्तमिति सम्बन्धः। सकलमिति सर्वम्, सर्वताथाग-तमित्यर्थः। तत्र कथं ब्रह्माण्डं तथा व्याप्तम्? यस्मात् तन्मयमेव सर्वबुद्धानां ब्रह्माण्डम्। कस्मागाराचरौ लोकौ तया व्याप्तौ? तदुद्भवत्वात् तयोः। एतदेवाह--उत्पत्तिरित्यादिना। उत्पत्तिः कारणम्। सर्वदेवानामिति पञ्चानां

कुलडाकिनीनाम्, ब्रह्मादीनामिति पञ्चानां तथागतानाम् उत कुलानां च प्रत्येकमनन्तानाम्। महर्द्धिकेति महाप्रभावा॥ ४ ॥

यहाँ ब्रह्मा शब्द से संभोग-निर्माणकाय में संगृहीत तथागत ही निर्दिष्ट हुए हैं। अण्ड-उत्पत्ति स्थान है - धर्मकाय ही है। परिशुद्ध बुद्धक्षेत्र में जो सत्त्वलोक है वही चर है। उसमें अवस्थित भाजन लोक ही अचर है। सर्व शब्द से सभी तथागतों के कुल का संकेत है। उससे व्याप्त का अर्थ है उनसे अभिन्न या तन्मय है। सभी देवों का उत्पत्ति स्थान का अर्थ पाँच कुल डाकिनियों का है। और पाँच तथागतों का भी है॥ ४ ॥

तासां परमियं गुह्यं महामाया महेश्वरी।
महामाया महारौद्रा भूतसंहारकारिणी॥ ५ ॥

उनमें से परम गुह्य यह महेश्वरी महामाया है, जो परम रौद्र एवं भूतसंहार कारिणी भी है॥ ५ ॥

काऽसावित्याह--महामायेति। महामायाशब्देन भगवतो वज्रधरस्य परमरहस्या मूर्तिर्भगवान् हेरुक उक्तः। महेश्वरीति। ब्रह्मादयो हि देवानां सृष्टिः, अतस्ता ईश्वर्यः। ता अप्यस्याः सृष्टिः, अत इयं महेश्वरी। यत इयं महेश्वरी, अत एव तासां परमियं गुह्यम्। तासामिति वज्रडाकिनीनाम्। परमगुह्यमिति परमं गुह्यम्। इयमिति महामाया। तथाहि--सूक्ष्ममयमौदारिकाणां रूपाणां गुह्यमुच्यते। ततश्च पञ्चानां कुलानां कुलाधिपाः पञ्च गुह्यानि, तन्मयपञ्चकुलानां गुह्यानामपि गुह्यानि पञ्चडाकिन्यः। तथाहि--स्वकुलव्यापकप्रकाशलक्षणाः कुलेशाः। तेन ते औदारिकाः, भावांशप्रधानत्वात्। तस्यैव प्रकाशस्य द्वयशून्यतालक्षणा डाकिन्यः। ततस्ताः सूक्ष्माः, अभावाङ्गप्रधानत्वात्। तासां गुह्यातिगुह्यानां गुह्यं महामाया। तथाहि--एकैककुलधर्मतालक्षणत्वादौदारिक्यस्ताः। इयं तु पञ्चकुलसाधारणी धर्मता पञ्चनामपि तासां समता, ततस्तासामपीयं गुह्यमिति परमगुह्यमेषा। तद्वाचकत्वात् तन्त्रमपीदं परमगुह्यमुच्यते।

उच्यतां परमगुह्यम्। महामाया तु कथमुच्यत इत्याह--महामायेत्यादि। सा हि महारौद्रा, परमहिंस्रत्वात्। कुतः? यस्माद् भूतसंहारकारिणी। अविद्यासंभूतत्वाद् भूतं बुद्धबोधः सर्वमावरणम्, तस्य संहारकारिणी

प्रलयकर्त्री। स हि प्रलयः परो मोक्षः। एवं मन्यते मीनातिति माया, मीञ् हिंसायाम् (१४७७ क्र्या)। आत्वं णप्रत्यय इति॥ ५ ॥

यह महामाया क्या है? भगवान् वज्रधर की परम रहस्यमयी मूर्ति है जिसे हेरुक कहा गया है। ब्रह्मा आदि देवों की सृष्टि का कारण होने से ईश्वरी है साथ ही उनकी भी सृष्टि करने से महेश्वरी है। महेश्वरी होने से ही परम गुह्य भी है। हिंसक होने से परम रौद्र है। यह भूतों की संहारिका है। अविद्या से उत्पन्न होने से भूत है। वही आवरण है। उन आवरणों की संहारक होने से प्रलयकारिणी है। वह प्रलय मोक्ष है। मीञ् हिंसायाम् इस धातु से माया शब्द निष्पन्न हुआ है। अज्ञानों की नाशिका होने से हिंसक कही गई है॥ ५ ॥

यथा व्याप्तं च सकलं त्रैलोक्यं सचराचरम्।
सैषा संहरते विश्वं सृजते सा पुनः पुनः॥ ६ ॥

उस परम रहस्यमयी महामाया द्वारा समग्र चर एवं अचर जगत् व्याप्त हुआ है। जो संहार करती है तथा बारम्बार सृष्टि भी करती है॥ ६ ॥

गुह्यकानामियं माता महामायेति विश्रुता।
त्रैलोक्यसाधनी विद्या सर्वकामप्रदायिका॥ ७ ॥

गुह्यों की यह माता महामाया इस नाम से प्रसिद्ध है। यही तीनों लोकों की साधिका विद्या है तथा समग्र इच्छाओं की पूर्ति करने वाली भी है॥ ७ ॥

प्रकारान्तरमाह--ययेत्यादि। त्रैलोक्यमिति परिशुद्धं बुद्धक्षेत्रं सचराचरं पूर्ववत् व्याप्तम्, तदुद्भूतत्वात्। स हि धर्मकायः, तन्निष्पन्दं चैतत् सचराचरम्। एवं मन्यते निर्मिमीत इति माया। माङ् माने (१०८८ जु०) णप्रत्यय इति।

प्रकारान्तरमप्याह--सा पुनरित्यादिना। पुनरिति पुनरपरम्, अपरः प्रकार इत्यर्थः। सैषेति हेरुकरूपा महामाया। संहरते त्रैलोक्यमिति, दृष्टिपातेन महेश्वरादीनां दुष्टानां भस्मीकरणात्। पुनः पश्चात् सृजते, तदेव निर्दोषीकृत्य महाध्वजघण्टाध्वनिभिः प्रत्युगीवनात्॥ ६ ॥

त्रैलोक्य का अर्थ पूर्ववत् ही जानना चाहिए जो विशुद्ध बुद्ध क्षेत्र है। वह समग्र जगत् को व्याप्त करते हुए रहता है - धर्मकाय ही है। इस प्रकार मानने एवं निर्माण करने से भी माया कहा गया है।

यह - हेरूक मूर्ति धारिणी ही है। अपने दृष्टिपात मात्र से ही दुष्टों का भष्म करने से संहारक है, उसे ही दोष रहित करके फिर सृष्टि करने से बारम्बार सृष्टि कारक भी है। कैसे? महाध्वजा तथा घण्टा के नाद से भी वह जीवित करती है॥ ६॥

ततः किमित्याह--गुह्यकानामित्यादि। बाह्यवज्रकुले देवा ईषद् गुह्यत्वाद् गुह्यकाः। तेषामियं माता, मात्रीत्यर्थः। अतश्चेयं महामायेति विश्रुता ख्याता। मीञो माङश्च णप्रत्ययं कृत्वा पूर्ववदिति भावः। आस्तामियं स्वयमीदृशी, साधकानां तु किं करोतीत्यत आह-- त्रैलोक्येत्यादि। निरुत्तरज्ञानस्वभावत्वाद् विद्या। इयं महामायाख्या विद्या साधकानां त्रैलोक्यं साधयेति। सर्वकामाः सर्वाभिप्राया विद्याधरत्वादयः, तांश्च प्रकर्षेण ददातीति। इदं श्लोकार्धमुद्देशः। तस्यैव निर्देशो यया (१८) इत्यादिः, अनेन योगमायाविद्येन (११६) इत्येतत्पर्यन्तः॥ ७ ॥

बाह्य वज्रकुल में थोड़े से देवताओं की गुह्य-गोपन करने से गुह्यक हैं, उनकी यह माता है - रक्षिका तथा उत्पादिका है। यह स्वयं ऐसी है किन्तु साधकों के लिए क्या करती है?

साधकों के लिए त्रैलोक्य का ही साधन कराती है। इनकी कृपा से विद्याधर आदि की शक्ति भी साधक को प्राप्त होती है॥ ७ ॥

यया विज्ञानमात्रेण साधकेश्वरीविद्यया।
देवदानवगन्धर्वा यक्षासुरनराश्च ये॥ ८ ॥
विद्याधरा गुह्यकाश्च किन्नराश्च महोदराः।
राक्षसाश्च पिशाचाश्च सिद्ध्यन्ते साधकेषु वै॥ ६ ॥
वश्यानि सर्वभूतानि जलजस्थलजानि च।
प्रकृतिप्रभास्वरा धर्मा आदिशुद्धा ह्यनाविलाः॥ १० ॥

जिसके ज्ञान मात्र से, उस साधकों की हितकारिणी ईश्वरी विद्या के बल से देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, असुर, नर, विद्याचर, गुह्यक जो महान् उदर से युक्त हैं, राक्षस, पिशाच, साधकों के लिए, जो जलचर तथा स्थलचर भी सिद्ध हो जाते हैं।

वे सभी धर्म भी उस साधक के लिए सिद्ध होते हैं, जो प्रकृति से ही निर्मल हैं, आदि शुद्ध तथा दोषरहित भी हैं॥ ८-१०॥

यया विद्यया साधकेश्वरीति साधकानामीश्वर्या, विज्ञानमात्रेणेत्यनुष्ठितमात्रया, साधकेषु सिद्ध्यन्त इति सम्बन्धः। के सिद्ध्यन्त इत्याह--देवेत्यादि। देवाः शुक्रादयः, दानवाः प्रेतमहर्द्धिकाः, गन्धर्वा धृतराष्ट्रप्रभृतयः। सह यक्षादिभिर्वर्तन्त इति तथोक्ताः। साधकेष्विति साधकानां सिद्ध्यन्त इति विधेया भवन्ति॥ ८-९॥

वश्यमिति विधेयत्वम्। भूतानीति सत्त्वाः। जलजानि मकरादीनि। स्थलजानि व्याघ्रादीनि। एवं तावद्बाह्यस्य त्रैलोक्यस्य साधनानीति निर्दिष्टम्। लोकोत्तरस्यापि त्रैलोक्यस्य साधनानीति निर्देष्टुमाह--प्रकृतीत्यादि। अत्र श्लोकार्द्धेन संक्षेपतो हेतुतन्त्रमुक्तम्, स्वयम्भूपञ्चज्ञानिनाम् इत्यनेन श्लोकपादेन फलतन्त्रम्, तृतीयपञ्चमषष्ठैः पादैरुपायतन्त्रम्। प्रकृतिर्निजः स्वभावः, तया प्रभास्वराः प्रभासनशीलाः, प्रकर्षेण निर्मला इत्यर्थः। के पुनस्त इत्याह--धर्मा इति। स्वलक्षणधारणा धर्माः, सर्ववस्तूनीत्यर्थः। तानि पुनः सर्ववस्तूनि चित्तमात्राणि, चित्तस्यैव तेन तेनाकारेण प्रतिभासनात्। तद्यथा स्वप्ने भवनोद्यानवापीकरितुरगमनुष्यादिरूपेण ह्यनेकानामपि चित्तविशेषत्वात्। उक्तं च दशभूमिके--चित्तमात्रमिदं यदुत त्रैधातुकम् इति। आर्यलङ्कावतारेऽप्युक्तम्--

बाह्यो न विद्यते ह्यर्थो यथा बालैर्विकल्प्यते।
वासनालुठितं चित्तमर्थाभासः प्रजायते॥ इति ।

वासनालुठितमिति वासनाभिरुपहतम्, विप्लुतमित्यर्थः। भवन्तु चित्तमात्राः सर्वधर्माः, ते तु कुतः प्रकृत्यैव भास्वराः प्रभास्वराश्चेत्यत आह--आदीत्यादि। आ आदेरादिः, आदितः प्रभृतीत्यर्थः। सर्वावरणमलाभावाच्छुद्धाः, मलवासनानामभावादनाविलाः। हिशब्दो यस्मादर्थे। यस्मादादिशुद्धास्तस्मात् प्रकृति-प्रभास्वरास्त्रिभिः कार्ययैस्तस्मात् प्रकृतिप्रभास्वराः।

ननु विद्यमानेषु मलेषु तद्वासनासु च कथं शुद्धा अनाविलाश्च, अतः स्वभावानां मलानां तत्रागन्तुकत्वात्, आकाशे तमस्तुहिन-

धूमाभ्ररजसामिव, तस्मात् प्रकृतिप्रभास्वराः। यद्येवं न स्यात्तदा न कस्यचिद्बोधिः स्यात्, चित्तस्वभावानां मलानां सति चित्ते क्षयायोगात्। तस्मात् प्रकृतिप्रभास्वरत्वं चित्तस्य बोधेर्हेतुः, बोधिः फलम्। स सा पुनर्बोधिः सवासनसर्वावरणक्षयादात्यन्तिकी चित्तसन्तानस्य विशुद्धिः, सैव धर्मकायः। संभोगनिर्माणकायसंगृहीतानां धर्माणां कायो वास आश्रय इति कृत्वा॥ १० ॥

अनुष्ठान मात्र से साधकों की ईश्वरी प्रसन्न होती है और सिद्ध होती है। देव शक्र आदि। दानव प्रेत आदि। गन्धर्व धृतराष्ट्र आदि। भूत सत्त्व हैं। जलज मकर आदि। स्थलस्थ - बाघ आदि। प्रकृति प्रभास्वर संकेत से संक्षेप में हेतुतन्त्र का निर्देशन किया गया है। बाद में (११ श्लोक) फलतन्त्र तथा उपायतन्त्र का भी निर्देश करेंगे।

धर्म शब्द से स्वलक्षणधारणयुक्त धर्म कहे गए हैं। वे चित्त और उनके धर्म ही हैं॥ ८-१० ॥

तत्रोपायाः प्रगीयन्ते स्वयम्भूपञ्चज्ञानिनाम्।
योगिनी योगमाता च त्रैधातुकमशेषतः॥ ११ ॥

स्वयम्भू आदि पाँच ज्ञानियों के लिए यह उपाय बताया जाता है। जहाँ योगिनी, योगमाता और समग्र त्रैधातुक का व्याख्यान - वर्णन किया गया है॥ ११ ॥

तत्र बुद्धा भगवन्तो धर्मकायेन स्वयंभुवः स्वयमेव भवन्ति, सर्वावरणरूपतः कैवल्यात् स्वरूपेणैव प्रख्यान्तीति कृत्वा पञ्चज्ञानिनः। पञ्चज्ञानान्येषाम्-- आदर्शज्ञानम्, समताज्ञानम्, प्रत्यवेक्षणाज्ञानम्, कृत्यानुष्ठानज्ञानम्, सुविशुद्धधर्मधातुज्ञानं चेति। तत्रादर्शज्ञानमादर्शवन्निर्मलमनन्तं शाश्वतं च मध्यवर्तिनो ज्ञानत्रयस्याश्रयः, सर्वेषां ज्ञानान्तराणां प्रतिबिम्बोदयस्थानम्, येन प्रतिबिम्बोदयेन तथागताः सर्वाकारसर्वधर्मदर्शिनो भवन्ति। समताज्ञानं सर्वसत्त्वेष्वात्मनिर्विशेषताज्ञानं सदा महामैत्रीमहाकरुणासम्प्रयुक्तम्। प्रत्यवेक्षणाज्ञानं सर्वज्ञेयेष्वव्याहतं सर्वसमाधिधारणीनां निधानं धर्ममण्डलेषु सर्वासां स्वविभूतीनां निदर्शकम्, महाधर्मदृष्टीनां प्रवर्षकम्। येन ज्ञानेन तथागताः सर्वलोकधातुष्वनन्तैः

कायवाक्चित्तनिर्माणैः प्रतिक्षणमनन्तानां सत्त्वानामर्थं कुर्वन्ति, तदेषां कृत्यानुष्ठानज्ञानम्। येन ज्ञानेन तथागताः सर्वधर्मतथतां सुविशुद्धां पश्यन्ति, तन्मात्रदर्शनात्, सर्वनिमित्तमलानामत्यन्तमप्रख्यानात्, तदेषां सुविशुद्धधर्म-धातुज्ञानम्। आद्यानि त्रीणि ज्ञानानि संभोगकायः। चतुर्थं निर्माणकायः। पञ्चमं धर्मकायैकदेशः। स्वयम्भुवश्च ते पञ्चज्ञानिनश्चेति तथोक्ताः, तथागता इत्यर्थः। तेषां फलभूतानामुपायाः प्रगीयन्ते प्राधान्येन देश्यन्ते।

तत्रेति तस्मिन्, हेतौ प्रकृतिप्रभास्वरत्वे सति। नह्येतत् फलं सत्यपि हेतौ विनोपायैर्भवति, हेतोरनादित्वेन सर्वेषामादित एव बोधेः प्रसङ्गात्। तस्मादुपायाः प्रगीयन्ते। के त इत्याह--योगिनीत्यादि। योगिनीति पञ्चडाकिन्यः। योगमातेति महामाया। त्रैधातुकमशेषत इति सर्वं त्रैधातुकम्। तान्यत्र च सम्भूताः कुलेशाः कुलानि च। कथमेतानि त्रैधातुकम्, त्रिषु वज्रधातुषु तथागतगुह्येष्वन्तर्भावात्। कथमेते उपायाः? हेतौ सम्पत्तौ बोधिभव्यतालक्षणायां सत्यामेषामेव भावनया जायादि परिच्छदया बोधेराशु प्राप्तेः, प्राप्तायां च तस्यामेभिरेव संभोगनिर्माणकायसंगृहीतैः परेषां यथाभव्यं बोधित्रयप्रापणात्॥ ११ ॥

बुद्ध भगवान् ही स्वयंभू हैं। क्योंकि वे स्वयं ही होते हैं। सभी आवरणों से मुक्त होने से स्वयं ही प्रख्यात या दिखते हैं इसीलिए पाँच ज्ञानी हैं। जिनके पास पाँच ज्ञान हैं वे ही ज्ञानी हैं। पाँच ज्ञान हैं - आदर्श ज्ञान, समता ज्ञान, प्रत्यवेक्षणा ज्ञान, कृत्यानुष्ठान ज्ञान और सुविशुद्धधर्मधातु ज्ञान।

आईने के तरह विशुद्ध होने से यह आदर्श ज्ञान है। सभी सत्त्वों में समान होने से तथा महामैत्री, महाकरुणा से युक्त होने से समता ज्ञान कहा गया है।

सभी ज्ञेयों में अव्याहत होने से प्रत्यवेक्षणा है।

जिस ज्ञान से समग्र सत्त्वों के इच्छाओं की पूर्ति होती है वह कृत्यानुष्ठान ज्ञान है।

सर्वधर्मतथता के बोध होने से सुविशुद्धधर्मधातु ज्ञान है। आदि के तीन ज्ञान संभोगकाय हैं। चौथा निर्माणकाय है। पाँचवाँ धर्मकाय का एक भाग है।

वे स्वयंभू तथा पञ्चज्ञानी भी हैं - तथागत॥ ११ ॥

सिद्ध्यत्यशेषनिःशेषं सर्वं मायाविकुर्वितम्।
हरते सर्वबुद्धानां भुङ्क्ते सुराग्रकन्यकाः॥ १२ ॥

माया द्वारा निर्मित समग्र तत्त्व पूर्णरूप से उस साधक के लिए सिद्ध हो जाते हैं। सभी बुद्धों के ज्ञानों का भी आकर्षण हो जाता है, और वह साधक इन्द्रादि देवों के ऐश्वर्य का भी उपभोग कर सकता है॥ १२ ॥

सिद्ध्यतीति मार्गरूपेण फलरूपेण च साधकानां निष्पद्यते यया विज्ञातमात्रया। अशेषनिःशेषमिति। एतदेव योगिन्यादि-राशित्रयम् एकस्यापि राशेरपरित्यागान्निःशेषम्, एकस्या अपि देवताया अपरित्यागादशेषम्, अशेषं च तन्निःशेषं च। कस्मात् सिद्ध्यति? यस्मात् सर्वं मायाविकुर्वितम्। सर्वमिदं महामायाधीनं मार्गफलावस्थयोरित्यर्थः।

त्रैलोक्यसाधनीति यत् पूर्वम् उद्दिष्टं तन्निर्दिष्टम्। सर्वकामप्रदायिकेति यदुद्दिष्टं तदपि निर्दिष्ट माह--हरत इत्यादि। हरते आकर्षयति स्वार्थाय परार्थाय वा। बुद्धानामिति बुद्धान्। भुङ्क्त इति आकृष्योपभुङ्क्ते। सुराग्राः सुरश्रेष्ठाः शक्रादयः॥ १२॥

जिसके ज्ञान मात्र से साधकों के लिए मार्ग के रूप में तथा फल के रूप में वह सिद्धि आविर्भूत होती है। इससे योगिनी आदि तीनों राशियों का तथा समग्र देवों का निर्देश किया गया है। क्योंकि यह सब कुछ माया द्वारा ही प्रपञ्चित होने से मायाधीन है। अर्थात् मार्ग-फल व्यवस्था मायाधीन हैं।

यहाँ हरण का अर्थ आकर्षण है जो स्वार्थ के लिए तथा परार्थ के लिए ही है॥ १२ ॥

योगा योगेश्वरा विद्या इन्द्रजालं करोति च।
मोहनं स्तम्भनं चैव मारणोच्चाटनादिकम्॥ १३ ॥
वश्याकर्षणकर्माणि आकाशगमनं तथा।
परपुरादिकार्याणि अन्तर्धानादिकानि च॥ १४ ॥

इस विद्या के द्वारा वह साधक और वे योगी, सिद्ध, तथा विद्या इन्द्रजालपूर्वक मोहन, स्तम्भन, मारण और उच्चाटन भी कर सकते हैं।

इसी प्रकार वश्य, आकर्षण, आकाशगमन, दूसरों के नगरों में प्रवेश, अन्तर्ध्यान आदि कार्य भी सहज रूप से कर सकते हैं॥ १३-१४॥

योगाः समाधयः। तेष्वैश्वर्यं वशित्वं समापत्तये व्युत्थानाय च। विद्या महामाया। इन्द्रजालं सैन्यादीनां निर्मापनं दर्शनमन्तर्धानं च यथायोच्चं सदसताम्। मोहनं मूर्च्छा सञ्जननम्। स्तम्भनं निष्पन्दीकरणम्। मारणं रत्नत्रयादेरत्यन्तापकारिणाम्। उच्चाटनं स्थानत्याजनम्। आदिशब्दा-दङ्गभङ्ग्ज्वरग्रहराक्षस-ग्रहणादिकम्॥ १३ ॥

वशं गतो वश्यः। इह तु वश्यार्थं कर्म वश्यमुक्तम्। आकर्षणे द्वे-- पादाकर्षणं पिण्डाकर्षणं च। प्रथमं भूम्या,द्वितीयं आकाशेन। त्रीण्येतानि कर्माणि वश्याकर्षणकर्माणि। परपुरे परशरीरे प्रवेशः परपुरशब्देनोक्तः। आदिशब्देन व्युत्क्रान्त्यादीनि गृह्यन्ते। तान्येव कार्याणि परपुरादिकार्याणि। अन्तर्धानानीति। अदृश्यत्वानि॥ १४ ॥

योग समाधि है। व्युत्थान के लिए उनमें वशित्व तथा ज्ञान के लिए भी है।

विद्या महामाया है।

इन्द्रजाल - सैन्य आदि का निर्माण है।

दर्शन सज्जनों के लिए, अन्तर्ध्यान दुष्टों के लिए।

मोहन - मूर्च्छा करना है।

स्तम्भन - पूर्ण रूप से निश्चेष्ट करना है।

मारण - तीन रत्नों (बुद्ध, धर्म, संघ) के अनुपकारक या हानि करने वालों का मारण करना है।

उच्चाटन - स्थान से हटाना है।

आदि शब्द से अङ्गभङ्ग, ज्वर, व्याधि आदि करना है। वश हुआ ही वश्य है।

आकर्षण के दो भेद हैं - पैर से और पिण्ड से। पहला पृथिवी में, दूसरा आकाश में है।

दूसरे के पुर अर्थात् (नगर) शरीर में प्रवेश करना है। अन्तर्ध्यान होना- अदृश्य होना है॥ १३-१४॥

विद्वेषणं जम्भनं च पातालगमनं तथा।
विद्याधरचक्रवर्तित्वमजरामरत्वं तथा॥ १५ ॥

निर्व्याधित्वं च भवति योगमायाविद्यः।
अक्षरं मन्त्ररूपं च विकुर्वन्ति हि योगिनः॥ १६ ॥

विद्वेष, जम्भन, पाताल गमन, विद्याधरों में श्रेष्ठ अवस्था, जरामरण रहित (अमर) हो जाते हैं - साधक, साथ ही व्याधि रहित भी हो जाता है वह साधक जो योग माया विद्या को जानता है। सभी अक्षरों को योगिगण मन्त्ररूप में परिणत भी कर देते हैं॥ १५-१६ ॥

अन्योन्यमनुरक्तयोरपि विद्वेषणं विद्वेषः। जम्भनं मूकीकरणम्। पातालगमनं बिलप्रवेशः। विद्याधराणां चक्रवर्ती यः, तेषां निग्रहानुग्रहक्षमो महाविद्याधरः, तद्भावस्तत्त्वम्। अजरत्वममरत्वं निर्व्याधित्वमिति, त्रयमपि सुगमम्। चार्थो गम्यते निर्व्याधित्वं चेति। एतन्मोहनादिकं सर्वमनेन योगमायाविद्येन, क्रियत इति शेषः। मायेति महामाया, विद्यैव विद्यः, सर्वबुद्धधर्माणामेकरसत्वं योगः, योगश्चासौ मायाविद्यश्च। विद्याधरेत्यादि श्लोकार्धं सप्तदशाक्षरम्, निर्व्याधीत्यादिकं चतुर्दशाक्षरम्। एतेषु सर्वबुद्धधर्महरणादिकर्मसु प्रयोगाः केचिदत्रैव तन्त्रे वक्तव्याः। केचिदन्यतन्त्रानुसारेण द्रष्टव्याः। विज्ञानमात्रेणेत्युक्तम्, अनुष्ठितमात्रयेत्यर्थः। अतोऽनुष्ठानं दर्शयितुमाह--अक्षरमित्यादि। अक्षरं मन्त्राक्षरम्, मन्त्ररूपं मन्त्रजा मूर्तिः। अक्षरं च मन्त्ररूपं च तेन तासामित्यर्थः। विकुर्वन्ति विक्रीडन्ति कर्मादिसिद्धिभिः। योगिनः साधकाः॥ १५-१६ ॥

एक दूसरे में अनुरक्तों के बीच में द्वेष पैदा करना ही विद्वेष है। जम्भन- गूँगा बनाना है। चक्रवर्ती का अर्थ है निग्रह अनुग्रह करने में सक्षम तथा विद्याधरों में श्रेष्ठ।

अक्षर - मन्त्राक्षर है। मन्त्ररूप अक्षर तथा मन्त्र से उद्भुत मूर्ति है।

योगी - साधक ॥ १५-१६ ॥

पठन्ति ये चिन्तयन्ति भावयन्ति समाधिना।
पठिता कुरुते विद्या विद्यासिद्धिं च कारयेत्॥ १७ ॥
न व्रतं न तपो दुःसहमुपवासं न संवरम्।
सुखहर्षैश्च सिद्ध्यन्ति प्रज्ञोपायादिभिः सदा॥ १८ ॥

जो पढ़ते हैं, चिन्तन करते हैं तथा समाधिपूर्वक भावना करते हैं उनके लिए वह विद्या - जो पढ़ी गई है, - सिद्धिकारक होती है। सिद्धि प्रदान करती है। इस सिद्धि के लिए न व्रत की आवश्यकता है न ही कठिन उपवास या संवर की ही आवश्यकता है किन्तु सुख और आनन्दपूर्वक, प्रज्ञा और उपाय द्वारा हमेशा सिद्धि उपलब्ध होती है॥ १७-१८॥

अक्षरं कथमनुतिष्ठन्तीत्याह--पठन्ति चिन्तयन्तीति। अत्र पाठो वाचा जपः। चिन्ता चित्तेन जपः। मन्त्रमूर्तिं कथमनुतिष्ठन्तीत्याह--भावयन्ती-त्यादि। भावयन्तीति प्राबन्धिकेन मनोविज्ञानेन पश्यन्ति, समाधिनेति तदालम्बनया चित्तस्थित्या। पठितेत्यादिना यथानुष्ठानफलमाह--पठितेति। जप्ता विद्या महामाया। कुरुत इति। आकर्षणादीनि सर्वकर्माणि करोति। द्वितीयेन विद्याशब्देन भावनामयी प्रज्ञोच्यते। सा पुनर्मूर्त्तिभावना-परिनिष्पत्तिरूपं स्वदेवताकारस्यात्मनः परिस्फुटं दर्शनम्। सिद्धिं कारयेत् साधकस्य महामुद्रासिद्धिम्, चकारात् कर्माणि च साधयेत्। स्वदेवतारूपस्यैवात्मनो निष्पत्तिः स्वयं परैश्च महामुद्रासिद्धिः॥ १७ ॥

अनुष्ठाने सौकर्यमाह--नेत्यादि। अत्र न-शब्देषु कारयेदिति वर्तते, न कुर्यादित्यर्थः। त्रिस्नानत्रिचैलपरिवर्तादिकं नियमः। शाकयावकाद्याहारत्वं तपः। दुःसहत्वं कष्टम्। अयमुद्देशः। अस्यैव निर्देश उपवासः संवरश्च। तत्रोपवासोऽनशनम्। संवरस्तीव्ररागस्यापि गृहिणो ब्रह्मचर्यम्। अनुग्राहिका वेदनाः पञ्चविज्ञानसहजाः सुखानि, मनोविज्ञान-सहजास्ता एव हर्षाः, तैः साधकाः सिद्ध्यन्ति। भावनामयी महाडाकिनी तद्रूपभाविता वा बाह्यस्त्री प्रज्ञा, तस्या उपाय उपशमः श्रीहेरुकरूपभा-वितेनात्मना परिभोगः। आदिशब्दात् पञ्चोपहाराः पञ्चकामगुणाश्च, तैः सदेति प्रतिसन्ध्यम्॥ १८ ॥

यहाँ पाठ का तात्पर्य जप से है।

चिन्ता चित्त से स्मरण है।

भावना - मनोविज्ञान द्वारा दर्शन - साक्षात्कार है। समाधि का अवलम्बन करके चित्त में स्थिर करना ही समाधि है।

विद्या – महामाया है।

दूसरी विद्या द्वारा भावनामयी प्रज्ञा का निर्देश है।

सिद्धि – महामुद्रा की सिद्धि है।

नियम से तात्पर्य तीन बार स्नान, वस्त्र त्याग आदि है और उपवास भोजन त्याग है।

संवर – ब्रह्मचर्यावास है।

सिद्धि – भावनामयी महाडाकिनी है। उससे समुद्भुत प्रज्ञा ही है।

उपाय – उपशम है जो हेरुक के रूप में उपस्थित होते हैं॥१७-१८॥

नाभिमध्ये स्थितो वीरः कर्णिकागूढगोचरः।
चित्तमचित्तं चिद्रूपं ज्ञानज्ञेयस्वरूपकम्॥ १६ ॥

वह वीर नाभि के अन्दर अवस्थित है और कर्णिका के भीतर गुप्त होकर रहता है। साथ ही वही चित्त, अचित्त तथा चित् रूप में अवस्थित है जो ज्ञान एवं ज्ञेयाकार में भी है॥ १६ ॥

कथं तावत् प्रज्ञोपायेन सुखहर्षा इत्याह--नाभीत्यादि। नाभिपद्मं नाभिः, तन्मध्ये स्थितः। कोऽसावित्याह--वीर इति। निरुत्तरवीर्ययोगाद् वीरो वज्रसत्त्वः। तत्रासौ कस्मिन् भाजने स्थित इत्याह--कर्णिकेत्यादि। नाभिकमलस्य कर्णिकायां गूढगोचरः कर्णिकागूढगोचरः। गूहनं गूढं गुप्तिः, तदर्थो गोचरः पात्रं गूढगोचरः, रविशशिनोः संपुट इत्यर्थः। इयता तस्य स्थानभाजने उक्ते। स्वभावमाह--चित्तेत्यादिना। चित्तं विज्ञानम्। सन्त्येकपदान्यवधारणानि। तद्यथाऽम्मात्रभक्षोऽब्भक्षः, वायुमात्रभक्षो वायुभक्ष इत्युच्यते। एवमिहापि विज्ञानव्यतिरिक्तस्यार्थस्य ग्राह्यस्याभावाच्चित्तमात्रं विश्वमिति चित्तशब्दस्यार्थः। तदपि चित्तमचित्तम्। कस्माच्चित्तम्, ग्राह्याभावात्। कस्माच्चिदचित्तम्? ग्राह्याभावे ग्राहकस्याप्यभावात्। अथ ग्राहकं हि लोके विज्ञानं प्रसिद्धम्। विज्ञानमेव चेह चित्तम्। तस्माच्चित्तं च तदचित्तं चेति चित्ताचित्तम्। यदि ग्राहकत्वेन चित्तलक्षणेन वियोगात्तदचित्तम्, कतरेण चित्तलक्षणेन योगाच्चित्तं तदित्यत आह--चिद्रूपमिति। चेतनं चित्, ख्यातिः प्रकाशः,

प्रतिभासनं स्फुटत्वम्, अपरोक्षतेति यावत्। सा रूपमस्येति चिद्रूपम्। चिद्रूपत्वेन चित्त्वलक्षणेन योगाच्चित्तं तदित्यर्थः।

ननु सर्वमेव विज्ञानमीदृशम्, तत्र कोऽतिशयो वीरस्वभावस्येत्यत आह--ज्ञानेत्यादि। स्वं निजं रूपं स्वरूपम्। ज्ञानं च ज्ञेयं चेति द्वन्द्वः। ज्ञानज्ञेयं स्वरूपमेव ज्ञानज्ञेयमस्येति ज्ञानज्ञेयस्वरूपकम्। ज्ञायतेऽनेनेति ज्ञानम्, ज्ञायत इति ज्ञेयम्। तत्र पृथग्जनज्ञानानामस्वरूपमपि ज्ञेयं भवति, ग्राह्यग्राहकयोरसतोरपि तैः कल्पनात्, अवस्तुनोरपि ग्राह्यग्राहकाकारयोस्तेषु प्रतिभासात्। यच्च नास्ति, न वस्तु वा, न तद्विज्ञानस्य निजं रूपम्, किं तर्हि भ्रान्तिसमारोपितम्। अत एव भ्रान्तिनिमित्तं तदुच्यते, भ्रान्तिचित्तत्वात्। येषामस्वरूपं ज्ञेयम्, तेषामस्वरूपमपि ज्ञानं भवति, यदुत भ्रान्तिः। तथाहि-भ्रान्तिवशादसद् अवस्तु वा प्रख्याति। ततः सापि ज्ञानम्, प्रख्यातौ कारणत्वात्। सा तु भ्रान्तिरबुद्धेर्निजं रूपम्, आगन्तुकत्वाद् मलानाम्। तस्मादस्वरूपमपि तेषां ज्ञानम्। पारमार्थिकं तु बोधिचित्तं निष्प्रपञ्चज्ञानात्मकम्। प्रपञ्चो भ्रान्तिः। ततः सर्वप्रपञ्चानां तत्राभावात्, स्वरूपमेव तस्य ज्ञानं न भ्रान्तिरपि, सर्वप्रपञ्चनिमित्तानां तत्रास्तमयाद-प्रतिभासात्। स्वरूपमेव तस्य ज्ञेयम्, नासदवस्तूनामपि। तदनेन श्लोकार्धेन पारमार्थिकबोधिचित्तलक्षणं निष्प्रपञ्चज्ञानरूपत्वं वीरस्य स्वभावः साक्षादुक्तः। महासुखरूपत्वं तु सामर्थ्यादुक्तम्, निष्प्रपञ्चज्ञान-सहजत्वान्महासुखस्य। तथा चोक्तमविकल्पप्रवेशायां धारण्याम्--

> अविकल्पाशयो भूत्वा सद्धर्मेऽस्मिन् जिनात्मजः।
> विकल्पदुर्गं व्यतीत्य क्रमान्निष्कल्पमाप्नुते॥
> प्रशान्तमचलं श्रेष्ठं वशवर्ति समासमम्।
> निर्विकल्पसुखं तस्माद् बोधिसत्त्वोऽधिगच्छति॥ इति।

एतस्मिन् गाथाद्वये अविकल्पाशय इति स्थिराशयः। सद्धर्मेऽस्मिन्निति महायाने। जिनात्मज इति बोधिसत्त्वः। विकल्प एव चतुर्विधो दुर्गः, तं क्रमाद् व्यतीत्य अतिक्रम्य। निष्कल्पमाप्नुत इति निर्विकल्पं निष्प्रपञ्चज्ञानं प्राप्नोतीति। तस्मादेव ज्ञानान्निर्विकल्पं सुखमाप्नोति। प्रशान्तम्, निष्क्लेशत्वात्। अचलम्, अपरिहाणीयत्वात्। श्रेष्ठम्, सर्वलौकिकलो-

कोत्तरसुखोत्कृष्टत्वात्। वशवर्ति, यथेच्छं यावदिच्छं च संमुखीकरणात्। समं तुल्यं तदन्यसुखैः सुखजात्या, असममेभिरेव चतुर्भिर्विशेषैः॥१६॥

यहाँ वीर वज्रसत्त्व हैं, निरुत्तर योग के कारण भी वीर हैं।

नाभि का अर्थ नाभि में स्थित कमल है।

वहाँ पर कहाँ है - नाभि में स्थित कमल के अन्दर गुप्तरूप से अवस्थित है।

चित्त - विज्ञान है।

ग्राह्य के अभाव के कारण चित्त मात्र कहा गया है।

अचित्त - ग्राह्य के अभाव होने से ग्राहक का भी अभाव है।

चेतन, ख्याति, प्रकाश, प्रतिभास या अपरोक्षता, स्फुटता ही चित्त है।

जिससे जाना जाता है वह ज्ञान है।

जो जाना जाता है वह ज्ञेय है॥ १६ ॥

तं वीरं कथयिष्यामि गम्भीरे बुद्धशासने।
आलिकालीसमां कृत्वा तत्र रेखात्रिसम्पुटाम्॥ २० ॥

उक्त वीर के विषय में मैं यहाँ बताने जा रहा हूँ। यह सब गंभीर बुद्ध शासन में अवस्थित है। जहाँ आली - काली का योग बताया गया है साथ ही तीन रेखाओं के सम्पुट का भी वर्णन किया गया है॥ २० ॥

तमीदृशं वीरं कथयिष्यामि। कस्मिन् याने प्रसिद्धमित्याह-- बुद्धशासन इति। येन यानेन बुद्धो भवति तद्बुद्धशासनम्, महायाने इत्यर्थः। ननु पूर्वश्लोकेन कथित एवायम्, किमुच्यते कथयिष्यामीति? अत आह- गम्भीर इति। गम्भीरमहायाने, मन्त्रयान इत्यर्थः। पारमितानयविलक्षणो हि मन्त्रनये बोधिचित्तस्य मुद्राकारः परिच्छेदश्च क्षिप्रतरं बोधिसाधनो भाव्यते। स चाद्यापि नोक्तः। तेनाह--कथयिष्यामीति। तमेवाह-- आलिकालीत्यादिना। तत्रेति रविचन्द्रसम्पुटे नियोजितेति नियमनाय योजिता। केत्याह--रेखेति। तस्मादेव वीराच्चन्द्रमध्य-सूक्ष्मरन्ध्रेणोत्थिता अभेद्या अच्छेद्या मृणालतन्तुसूक्ष्मा रश्मिरेखा। कथं नियोजिता-- आलिकालीसमां तामेव कृत्वा आलिः काली च समा यस्यां सा तथोक्ता। ताः कथं तस्याम्? तस्यामेव मुक्तावलियोगेन ग्रथिता यतः। कथं समाः?

यस्मादर्धकाली द्वे कालीशब्देनोक्ते, काल्येकदेशत्वात्। ते अपि षोडशाक्षरे, ङञयोर्वर्जनात्। अतस्तासां साम्यम्। सा च रश्मिरेखा त्रिभिर्वेष्टैः संपुटं वेष्टयति। तस्यामालित्रयं चन्द्रस्योपरि ग्रथितं यथापाठम्। तत्र मध्ये स्वराली अनयोरर्धकाल्यौ। तथा च वक्ष्यति--दिव्यमक्षरपङ्क्ति भिः इति। श्रीसंवरोत्तरे चोक्तम्--

ककारादि दकारान्त ङञवर्ज निवेशयेत्।
धकारादि क्षकारान्तम् आलिद्वयं समालिखेत्॥
मध्यस्था तु अकाराली न्यस्तव्या शशिमण्डले॥ इति॥२०॥

गंभीर बुद्ध शासन में आली काली का रहस्य बताऊंगा। यह बुद्ध शासन क्या है? जिस यान से बुद्ध हुआ जाता है वही है - महायान।

गंभीर - मन्त्रयान है।

पारमितामार्ग से विशिष्ट एवं विलक्षण मन्त्रनय है जहाँ शीघ्रता से बोधि उपलब्ध होती है।

आली - काली = सूर्यचन्द्र नाडी - समायोग।

अर्थात् दोनों नाडियों को समत्व में स्थापित करना - सुषुम्ना में प्रविष्ट हो जाना है। वह संयोग तीन रेखाओं से है।

इडा-पिङ्गला-सुषुम्ना संबद्ध होने से तीन रेखाओं से है।

अत्यन्त सूक्ष्म छिद्र से उत्थित, अभेद्य, अच्छेद्य जो मृडालतन्तु के तरह ही सूक्ष्म है॥ २० ॥

ज्वलितोर्ध्वमुखी रेखा तदाधः स्रुतिकारिणी।
शुक्ररूपेण स्रवति अमृतं बिन्दुरूपिणम्॥ २१ ॥

वह रेखा जलती हुए उपर की ओर फैली हुई है। जो नीचे की ओर चूती हुई प्रतीत होती है। जो स्राव है वह शुक्र है, वही बिन्दु रूप से अमृत के रूप में दिखती है॥ २१ ॥

ज्वलितेत्यादि। अपरा रश्मिरेखा प्रज्ञारागानलेन ज्वलिता यदा वीरादुद्गच्छति, तदासौ अधः स्रुतिकारिणी भवति। अत्र हि स्रुतेरर्थः स्रवतिशब्देनोक्तः, स्रुतिरित्यर्थः। अथ तस्यां स्रुतौ कः स्रवतीत्याह-- अमृतमिति। मुक्तत्वादविनाशित्वान्महासुखत्वाच्चामृतम्। कीदृशमित्याह-

-बिन्दुरूपिणमिति। महासुखचित्तरूपः सितबिन्दुः वीर इत्यर्थः। कथं स्रवतीत्याह--शुक्ररूपेणेति। विशुद्धज्ञानरसः सितमुखद्रवरूपत्वेन शुक्रसाधर्म्यात् शुक्रशब्देनोक्तः। तेन रूपेण स्रवति, क्षरति, तत्क्षरतीति यावत्। तदत्रालिकालीत्यादिना वीरस्य सौस्थित्यमुक्तम्। ज्वलितेत्यादिना कर्म। अमृतमित्यनेन स्वभावान्तरम्। बिन्दुरूपिणमित्यनेन तस्य मुद्राकारः कथितः। कथं पुनरियमस्य मुद्रा भवति? उच्यते--योऽसाबिन्दुर्धवलः सूक्ष्मबिन्दुः, स चित्तम्, अन्तःप्रकाशमानत्वात्। या पुनस्तन्मात्रे चित्तस्यावस्थितिः, सा चित्तव्यतिरिक्तार्थानुपलम्भाच्चित्तमात्रता। या तस्य ग्राह्या-भावादग्राहकता, सा तस्याचित्तता। अत एवासौ शून्यरूपः। या पुनस्तस्य प्रकाशमानता सा चिद्रूपता। यः पुनस्तन्मात्रे स्थितचित्तस्य सर्वप्रपञ्चनिमित्तास्तमयः, सा तस्य ज्ञानज्ञेयरूपता। अयं चास्य वज्रधरस्य सूक्ष्मज्ञानमुद्राकारः। श्रीसमाजेऽप्युक्तम्--

"आकाशधातुमध्यस्थं भावयेच्चन्द्रमण्डलम्।
बुद्धबिम्बं विभावित्वा सूक्ष्मयोगं समारभेत्॥
नासाग्रे सर्षपं चिन्तेत् सर्षपे सचराचरम्।
भावयेज्ज्ञानपदं रम्यं रहस्यं ज्ञानकल्पितम्॥ इति।

(गु० स० ६८-९)

श्रीवज्रामृतेऽप्ययमस्य सूक्ष्मयोगः साधारः सकर्मक उक्तः--
तिष्ठते निश्चलं विद्या अमृतं ध्यानमारभेत्।
ध्यायते परमं तत्त्वममृतं बिन्दुरूपिणम्॥
खमध्ये शशिसंकाशं शून्यतत्त्वमुदाहृतम्।
अक्षयमव्ययं सूक्ष्मं वज्रसत्त्वमनाहतम्॥
नाभिमध्ये स्थितो देवः कर्णिकागूढगोचरे।
स्रवते शुक्ररूपेण भगलिङ्गान्तरे स्थितः॥ इति।
तस्माद्यादृशः पठ्यते, तादृश एवायमत्र योगः कर्म च।

नन्विह तन्त्रे चतुर्षु स्थानेषु चत्वारि चक्राणि ध्येयानि, न चण्डाली न तया ज्वलन्त्या चक्रचतुष्टयं तापयित्वा निःसृत्य स्फारित्वा सर्वबुद्धानां चतुश्चक्रं तापयित्वा तत आगत्य महासुखचक्रे प्रविश्य हंकाराद-

मृतस्त्रावणम्। यत्पुनः सर्वमेतदन्यतो दृष्टं कैश्चिदानीयते, तदयुक्तम्, वाचकाभावात्, सर्वतन्त्राणां च नानाभिप्रायत्वात्, सुसंक्षिप्तातिसमयत्वाच्चास्य तन्त्रस्य॥ २१ ॥

जलती हुई – अर्थात् प्रज्ञा राग रूपी अग्नि से ही वह जलती है। नीचे की ओर चू रहा है – वह अमृत ही है जिसके भक्षण से अमरत्व उपलब्ध होता है। मुक्त होने से अविनाशी और महासुखात्मक होने से अमृत है।

महासुख चित्तरूप है जो बिन्दुरूप में स्थित है।

शुक्र के रूप में वह रहता है – विशुद्ध ज्ञान रूप होने से और स्व%छ होने से शुक्र कहा गया है॥ २१ ॥

यद्यदिन्द्रियमार्गत्वं यायात् तत्तत्स्वभावतः।
परमाहितयोगेन सर्वं बुद्धमयं यतः॥ २२ ॥

जिस जिस इन्द्रिय के माध्यम से जिस विषय में पहुँचता है या उपभोग करता है, वह सब उसी-उसी, अपने-अपने स्वभाव से उपलब्ध है। उसे ही परमाहित योग से ग्रहण करने से सब कुछ बुद्धमय हो जाता है॥ २२ ॥

यद्यदित्यादिना कर्मान्तरमाह। इन्द्रियाणि चक्षुरादीनि, तेषां मार्गत्वं विषयत्वं यायात् प्राप्नुयात्। यद्यद्वस्तु यत्किञ्च दृश्येत, श्रूयेत, घ्रायेत, आस्वाद्येत, स्पृश्येत एतदेव सर्वं बुद्धमयं प्रत्येकमशेषबुद्धस्वभावं निश्चिनुयात्। कथं सर्वबुद्धमयम्? स्वभावतः स्वभावेन, प्रकृत्येति यावत्। तथा ह्यनादिनिधनो धर्मधातुः सर्वधर्माणां प्रकृतिः। स एव च धर्मधातुः सर्वबुद्धानां परमं रूपम्। तस्मात् तेन स्वभावेन सर्वबुद्धमयं तत्तन्न केवलं स्वभावेन परमाहितयोगेन च। विनापि तेन चार्थगतेः परममु%यते। लोकोत्तरं ज्ञानं निष्प्रपञ्चं वीराख्यम्, तेनाहितसाधनं जनितत्वं परमाहितं वीरनिष्पन्दत्वमित्यर्थः। तस्मिन् योगोऽधिमोक्षः, तेन दर्शनादौ प्रतिभासमानं दृश्यादिकं वीरस्यैव निष्पन्द इत्यनेन चाधिमोक्षेणेत्यर्थः॥ २२॥

इन्द्रिय – चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, रसना, त्वक् आदि हैं। इनसे जो विषय प्राप्त होते हैं, भोग में आते हैं इन्हें बुद्धमय मानना चाहिए।

क्योंकि वे सब बुद्ध से ही आते हैं। और वे सब धर्मधातु मय हैं जो ब्रह्मों का स्वभाव है। परम आहित योग से – अर्थात् परम ज्ञान, लोकोत्तर ज्ञान ही निष्प्रपञ्च है। उससे जनित – उत्पन्न होने से आहित योग कहा गया है॥ २२ ॥

महासमयसिद्धिस्तु महागुलिकासाधनम्।
महामायाप्रयोगैश्च योगसंवरं कारयेत्॥ २३ ॥
पञ्चपूजोपहारैश्च पञ्चकामगुणैस्तथा।
सिद्धेन्द्रादिभिर्ज्ञातव्यं सिद्धिः शाश्वताऽव्यया॥ २४ ॥

वह महाज्ञान की (समय=सिद्धान्त) की सिद्धि और महाज्ञान बिन्दु की साधना महामाया के प्रयोग से उस योग संवर की सिद्धि होती है। उसे इनके प्रयोग से सिद्ध कराना चाहिए।

पञ्च पूजनों के उपहार पूर्वक पाँच काम गुणों से पल्लवित कर वह सिद्ध होता है जिसे हम अपने इन्द्रियों से जानते हैं और वह सिद्धि अव्यय एवं शाश्वत होती है॥ २३-२४ ॥

महासमयेत्यादिना कर्मान्तरमाह। समयो देवता। समण्डलो मण्डलाधिपतिर्महासमयः। तस्य सिद्धिर्निष्पत्तिः। तुशब्दः पादपूरणार्थः। सा सिद्धिर्महागुलिकासाधनं ज्ञानबिन्दुर्गुलिका, चतुर्बिन्दुः परिवारः, मध्यबिन्दुर्महागुलिका, तया साधनं निष्पादनम्, महासमयस्य सिद्धिः। सिद्धे मण्डले किं कुर्यादित्याह--महामायेत्यादि। मण्डलाधिपतिः श्रीहेरुको महामाया, तद्विद्यापि बुद्धडाकिनी महामाया, तयोरेकस्वभावत्वात्। तयोः प्रयोगैः कर्मभिराश्लेषचुम्बनादिभिर्योगसंवरं कारयेत्। योगश्च संवरं च योगसंवरम्। तत्र नाभिकमलकर्णिकारविसोमसम्पुटगतसितसूक्ष्मबिन्दुर्योगः। संवरं सुखवरं महासुखं प्रतिवेधविचारणानन्तरं कर्म, ज्वलितेत्यादिना श्लोकेन यत्पूर्वमुक्तम् ॥ २३ ॥

किं केवलमेव? नेत्याह--पञ्चेत्यादि। एभिर्दशभिः सहितमित्यर्थः। तस्मादेव ज्ञानरेतसो डाकिनीकमलोदरगतानां प्रत्येकं गगनव्यापिनां पुष्पदिमेघानां दशानां क्रमेण स्फरणात्। उपह्रियन्त इत्युपहाराः पुष्पधूपदीपगन्धनिनैवेद्यानि। अप्राप्ताः काम्यन्तेऽभिलष्यन्त इति कामाः, प्राप्ता गुण्यन्ते पुनर्भुज्यन्त इति गुणाः, कामाश्च ते गुणाश्चेति कामगुणाः, प्रणीता रूपशब्दगन्धरसस्पर्शाः। तत्र संवरं गुह्यपूजा रत्न पूजा च। शेषा बाह्यपूजा। एतस्मिन् देवताराधने फलमाह--ज्ञातव्यमित्यादिना। ज्ञातव्यं निश्चेतव्यम्। अव्ययत्वादत्यन्ता, अक्षयत्वाच्छाश्वती महामुद्रासिद्धिः। तां प्राप्स्यामीति शेषः॥ २४ ॥

यहाँ समय शब्द से देवता का ग्रहण किया गया है।

मण्डल सहित मण्डल का अधिपति ही मण्डलाधिपति है। सिद्धि – उपलब्धि है।

महागुलिका – ज्ञान बिन्दु है। जिसका परिवार है – चार-बिन्दुओं का समूह।

मण्डलाधिपति श्रीहेरूक ही महामाया हैं। वह विद्या भी बुद्धडाकिनी महामाया है। क्योंकि उनका एक ही स्वभाव है। उनका प्रयोग – आलिङ्गन चुम्बन मैथुन आदि के द्वारा प्रयोग है।

संवर – सुख, जो अत्यन्त आनन्द देने वाला है अतः महासुख कहा गया है।

पाँच इन्द्रियों के विषयोपभोग पूर्वक ही पञ्चपूजा है। जिसका चाह हो वही काम है और जो प्राप्त हैं वे गुण हैं। पञ्च इन्द्रिय तथा उनके पाँच विषय ही यहाँ अभिप्रेत हैं। इस प्रकार वे दश हो जाते है। इस योग से महामुद्रा की सिद्धि हो जाती है॥ २३-२४॥

येन ज्ञानेन सिद्धेन त्रिदशालयमाश्वियात्।
तदहं कथयिष्यामि देवति सत्यमहं शपे॥ २५ ॥
तदहं त्वां महामायां विद्यां त्रैलोक्यसाधनीम्।
वीरं महायोगिनां हि दिव्यमक्षरपङ्क्तिभिः॥ २६ ॥

जिस ज्ञान से, जिस सिद्धि से देवलोक में प्रवेश हो जाता है उसे मैं तुम्हे बता रहा हूँ। यह सब कुछ सत्य है। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ। उस महामाया के विषय में मैं तुम्हे बताता हूँ जो त्रैलोक्य की साधिका है। दिव्य अक्षरों से मन्त्रों से ही जाना जाता है योगियों के द्वारा – वह वीर क्या है मैं तुम्हे बताता हूँ॥ २५-२६॥

एवं समासतः सानुशंसां भावनामुक्त्वा इदानीं भावना-साधारणैरनुशंसैः सहितं जापमाह--येनेत्यादिना। ज्ञानेनेति विद्यया। सिद्धेनेत्यनुष्ठितेन। त्रिदशा देवाः, तेषामालयं भवनम्। देवतीति बुद्धडाकिन्याः सम्बोधनम्। किमिदं सत्यं न वेत्याह--सत्यमित्यादि। अवधारणं गम्यते। सत्यमेवाहं वदामि न कदाचिन्मृषेत्यर्थः॥ २५ ॥

तत्तर्हि ज्ञानं कतमा देवता किंप्रभावा किंस्वभावा चेत्यत आह--तदहमित्यादि। त्वामित्यादौ द्वितीया, वक्ष्यामीत्यनेन सम्बन्धात्। कतमा देवतेत्यत्रोत्तरम्--त्वां महामायां विद्यामिति। किंप्रभावेत्यत्रोत्तरम्-त्रैलोक्यसाधनीमिति। किंस्वभावेत्यत्रोत्तरम्--महायोगिनां दिव्यमिति। षष्ठीसमासोऽयम्। दीव्यत्यस्मिन्निति दिव्यं गुह्यम्, रविसोमसंपुटमित्यर्थः। तद्धि तासां समता। ततस्तदेव योगिनां रतिस्थानम्। अक्षरपङ्क्तिभिरिति तिसृभिः स्वरव्यञ्जनपङ्क्तिभिः, भूषितमिति शेषः। तन्मध्यवर्ती वीरः श्रीहेरुकः। स तु संपुटो बुद्धडाकिनीत्यर्थः॥ २६ ॥

जिस जप से, जिस मन्त्र से, जिस विधि से वह सिद्धि मिलती है साथ ही उस सिद्धि से कैसे किस देवलोक में प्रवेश होता है वह मैं तुम्हें – हे बुद्धडाकिनी तुम्हें बताने जा रहा हूँ।

मैं शपथपूर्वक कह रहा हूँ यह सब सत्य है। कभी भी मैं असत्य नहीं बोलता हूँ।

वह विद्या महामाया है जो तीनों लोकों को देनेवाली है। उसका स्वभाव भी दिव्य है। जिसमें आनन्द उपलब्ध होता है वहीं दिव्य है। अतएव वह गुह्य है। क्योंकि उसमें रवि सोम संपुट योग है। वही उनकी समता है। अतः वही योगियों की रति का स्थान है।

अक्षर पङ्क्तियों से –मन्त्रों के द्वारा। उनमें अवस्थित है वीर = श्रीहेरुक। वे बुद्धडाकिनी के साथ संपुट हैं॥ २५-२६॥

येन चिन्तितमात्रेण सिद्ध्यते सचराचरम्।
सर्वकामोपभोगैश्च सेव्यमानो यथेच्छया॥ २७ ॥
विक्रीडन् हि महायोगी सिद्ध्यते सर्वदा शुभे।
विभिन्नाकाररूपेण योगात्म दर्शयन्ति च॥ २८ ॥
ददाति च महासिद्धिं कुरुते ताथागतीं श्रियम्।
सत्त्वार्थं कुरुते सदा विभिन्नैस्तु रसायनैः॥ २९ ॥
शुक्रमाहत्य मद्यं च महापिण्डं तथैव च।
महामांसं योगिनीभिराहत्य सह चर्यत॥ ३० ॥

जिसका चिन्तन करने मात्र से चर अचर दोनों भी संसार सिद्ध - उपलब्ध हो जाते हैं। और वह योगी समग्र इच्छित पदार्थों को पा जाता है। इस प्रकार क्रीडा करते हुए वह महायोगी सर्वदा शुभकर्म में लगा ही रहता है। विभिन्न आकारों के रूप में - पदार्थों के रूप में वह परिणत होता हुआ भिन्न-भिन्न पदार्थों को वह दिखता भी रहता है। वह महान् सिद्धियों को देने वाला भी होता है। साथ ही तथागतरूपी ऐश्वर्य को उत्पन्न भी करता है। सर्वदा प्राणियों के सहयोग के लिए विभिन्न रसायनों के प्रयोगपूर्वक शुक्र, मद्य तथा मांस, मनुष्यमांस को भी योगिनियों के साथ लाकर - संसार के कल्याणार्थ चर्या में लगा ही रहता है॥ २७-३०॥

येनेति वीराधिष्ठितेन रवीन्दुसंपुटेन स्वरव्यञ्जनालित्रयभूषितेन। चिन्तितमात्रेणेति जप्तमात्रेण। यथा तु जापः कर्तव्यस्तद् द्वितीयनिर्देशे वक्ष्यति। सचराचरमिति बाह्यं त्रैलोक्यम्। सिद्ध्यते विधेयीभवति। सेव्यमानो योगी। कैः वज्रयोगिनीभिः, यथेच्छयेति यादृशानिच्छन्ति, दर्शयन्तीति तस्मै दर्शनं ददति। योगात्मेति मन्त्रदेवताः॥ २७-२८॥

ददातीति ददति। महासिद्धिमित्यष्टविधां खड्गाञ्जनादिकाम्। ताथागतीमिति, तथताधिगमात् तथागता बुद्धबोधिसत्त्वाः, तेषामियं ताथागती। श्रीः सम्पत्। कुरुत इति स एव योगी॥ २९ ॥

मद्यमिति मद्याकर्षणम्। आहत्येति आकृष्य। आयुर्जीवितम्। वीर्यमुत्साहः। तेजः प्रभावः। दिव्यं चक्षुश्च चक्षुर्विज्ञानम्, ऋद्धिं चेति ऋद्ध्यभिज्ञां च। सोमपानममृतपानम्। दिने दिने प्रतिदिनम्। प्राप्नोतीति श्लोकशेषः॥ ३०-३१॥

चित्त मात्र से - उस मन्त्र के जप करने मात्र से।

चराचर - तीन लोक।

सिद्ध होना - चाहते ही उपकार के लिए उपस्थित होना।

तथागत - बुद्ध एवं बोधिसत्त्व।

श्रीः - ऐश्वर्य, सम्पत्ति।

मद्य - मदिरा का आकर्षण।

आयु - जीवन, श्वास-प्रश्वास आदि।

वीर्य - उत्साह।

तेजः - प्रभाव।

सोमपान - अमृतपान।

दिव्यचक्षुः - चक्षुर्विज्ञान।

ऋद्धि - विशिष्ट सिद्धि।

आठ प्रकार की सिद्धि से सम्पन्न होना ही ऋद्धियुक्त होना है॥ २७-३१॥

महायुश्च महावीर्यं महातेजो बलं तथा।

दिव्यं चक्षुश्च ऋद्धिं च सोमपानं दिने दिने॥ ३१ ॥

वह योगी लम्बी - यथेच्छ आयुवाला हो जाता है। उसी प्रकार विशिष्ट पराक्रम, विशिष्ट तेज, दिव्यचक्षु, विशिष्ट सिद्धियों से युक्त भी हो जाता है॥ ३१॥

स गच्छेद् विपुलमायुर्महाकल्पावसानकम्।

प्रातिहार्यं दर्शयति असेचनकविग्रहम्॥ ३२ ॥

वह योगी, इस प्रकार अनेक कल्पों तक का आयु पा जाता है। समग्र पदार्थों को अपने वश में करते हुए जब जिसकी आवश्यकता होती है उसे दिखाता है॥ ३२ ॥

मनोजल्पनमात्रेण स्वरूपपरिवर्तनम्।

विद्येश्वरी महर्द्धिका[१] पठितसिद्धाऽमोघिनी॥ ३३ ॥

मन से सोचते ही वह अपने आपको परिवर्तित कर सकता है। भिन्न रूप में दिखता है। उस महामन्त्र विद्येश्वरी के स्मरण मात्र से अनेक विध सिद्धियों को पा जाता है। वह सिद्धि कभी निष्फल नहीं होती॥ ३३॥

विद्ये ते सदृशी नास्ति त्रिषु लोकेषु काचन।

तन्त्राणामागमः सोऽयं कथितस्तव शोभने॥ ३४ ॥

उक्त विद्या के तरह अन्य कोई भी विद्या नहीं है - तीनों लोकों में, वही तन्त्रों का आगम है जिसे मैंने तुम्हे बताया है॥ ३४ ॥

महायुरित्युक्तम्। तस्यैव निर्देशः- स इत्यादि। स योगी विपुलं विस्तीर्णमायुर्गच्छेत् प्राप्नुयात्। महाकल्पोऽवसानं पर्यन्तोऽस्येति यथोक्तम्।

---

४. महद्धिदा इति कपाठः।

दर्शयतीति योगी। प्रति प्रति ह्रियन्ते आवर्ज्यन्तेऽनेन सत्त्वा इति प्रतिहार्यम्, स्वार्थेऽण् प्रातिहार्यम्। तच्च त्रिविधम्--ऋद्धिप्रातिहार्यम्, आदेशना-प्रातिहार्यम्, अनुशासनीप्रातिहार्यं च। यथाक्रमं तिस्रोऽभिज्ञाः-- ऋद्धिः, परचित्तज्ञानम्, आस्रवक्षयज्ञानं च। असेचनकविग्रहं दर्शनैरतृप्तिकरं शरीरं दर्शयतीति पूर्वेण सम्बन्धः॥ ३२ ॥

स्वरूपमात्मस्वरूपं तस्य परिवर्तनं पररूपपरिग्रहः। मनसा चिन्तितं मनोजल्पमात्रम् एवंरूपोऽहं स्यामिति। स्तुतिमुखेनोपसंहरन्नाह--विद्येश्वरीत्यादि। पठितसिद्धेति वर्तमाने क्तः। जापमात्रेण सिद्ध्यतीत्यर्थः। अमोघप्रभावयोगादमोघिनी, सिद्धायां सत्यामवश्यं यथोक्तफल-दानात्॥ ३३॥

विद्ये त इति। हे विद्ये। ते सदृशी त्वया तुल्या नास्ति मेऽन्या विद्या। त्रिषु लोकेष्विति। त्रिषु तथागतवज्रपद्मकुलेषु। आगमः साधनम्। शोभने इति सम्बोधनम्॥ ३४ ॥

उपायाङ्गेन योगेश्वरी, प्रज्ञाङ्गेन महाविद्या। का चासौ? महामाया। तस्याः सिद्धिरनुष्ठानम्, तस्या निमित्तं चिह्नम्, विविधः प्रभावः, तस्य निर्देशः कथनम्॥

कल्पान्ततक रहने की आयु ही महाआयु है।

प्रतिहार्य तीन हैं - ऋद्धिप्रातिहार्य, आदेशना--- और अनुशासनी--।

अभिज्ञा भी तीन हैं - ऋद्धि, परचित्त ज्ञान एवं आस्रवक्षयज्ञान।

तीनों लोकों में - तीन कुलों में - तथागत कुल, वज्रकुल एवं पद्मकुल में।

आगम - साधन।

योगेश्वरी - उपाय है।

प्रज्ञा - महाविद्या।

सिद्धिः - अनुष्ठान।

निमित्त - चिह्न।

निर्देशः - कथन। ॥३२-३४॥

॥ गुणवत्यां श्रीमहामायातन्त्रटीकायां प्रथमो निर्देशः॥

द्वितीयो निर्देशः

अथातो महायोगेश्वरीणां दिव्यं -
योगसिद्धिफलप्रदं गुह्याक्षरं वक्ष्यामि॥ १ ॥

अब, इसके बाद मैं महायोगेश्वरियों का दिव्य योग सिद्धि फल का दाता गुह्यमन्त्र को बताने जा रहा हूँ॥ १ ॥

येन चिन्तितमात्रेण प्रार्थितं ददते वरम्।
आदिमाक्षरयोगेन उच्छ्वासं कुरुते सदा॥ २ ॥

जिस मन्त्र के चिन्तन (जप) मात्र से मन चाहा फल मिल जाता है, और जो सर्वदा पहले अक्षर के रूप में हमेशा श्वास-प्रश्वास में चलता ही रहता है॥ २ ॥

अथात इत्यादि। इयमेकपदी गाथा द्वादशाक्षरा। अथशब्दः समग्रजपप्रस्तावनार्थः। अत इति देवतामूर्तिभावनादूर्ध्वम्। महायोगेश्वरीणां दिव्यमिति। सवीरं वीरभाजनम्, नाभिकमलकर्णिकायां चिन्तयेदिति शेषः। तस्मिन् किं जप्यमित्याह--गुह्येत्यादि॥ गुह्यमप्रकाश्यत्वात्। गुह्यतेऽनेन देवतातत्त्वमिति वा गुह्यम्। गुह्यं च तदक्षरं च। योगो देवतासमाधिः, तस्य, सिद्धिर्निष्पत्तिः, फलं तस्या एव निष्पत्तेर्महामुद्रासिद्धिः। ते द्वे प्रकर्षेण ददातीति योगसिद्धिफलप्रदम्॥ १ ॥

चिन्तितमात्रेणेति विनापि योगसिद्धिं जपमात्रेण प्रार्थितं विद्याधरत्वादिकं वरम्। संपुटगर्ते गुह्याक्षरं दृष्ट्वा तच्छीर्षे वीरमुत्थाप्य जपेदिति भावः। कथं जपेदित्याह--आदिमेत्यादि। अत्रादिममक्षरं प्रणवः, प्रायेण मन्त्राणामादौ तस्य दृष्टत्वात्। तस्य योगेन शनैरुच्चारेण। कुरुते, योगीति सम्बन्धः। किं कुरुते? उच्छ्वासम्, प्राणवायोरूर्ध्वगमनम्॥२॥

यह एक पदी गाथा, जो द्वादश अक्षरी कहलाती है। अथ से जप की प्रस्तावना है। अत देवतामूर्ति की भावना के लिए है। उस मन्त्र को नाभिकमल में चिन्तन करना चाहिए। गुह्य होने से अप्रकाश्य है। योग - देवता समाधि है। उसका फल महामुद्रासिद्धि ही है। चिन्तन मात्र से - सिद्धि के बिना ही केवल जप मात्र से। आदिम - पहला अक्षर ऊँ कार है। उसके साथ मन्त्र का उच्चारण धीरे से करना चाहिए। उच्छास - प्राणवायु के ऊर्ध्व गमन के साथ ही उसका जप करना है॥ १-२ ॥

अष्टान्तेन च संयुक्तमूकारतिलकेन हि।
निःश्वासं कुरुते योगी भावाभावविवर्जितम्॥ ३ ॥

अष्टमवर्ग के अन्तिम वर्ण के साथ ऊँकार को लगाकर योगी उच्छास करता है जो भाव और अभाव से पूर्णवर्जित है॥ ३ ॥

अष्टान्तेनेति अष्टमवर्गान्तेन, हकारेणेत्यर्थः। निःश्वासं कुरुत इति सम्बन्धः। कथं कुरुते? ऊकारेण हकारस्याधस्तात् समायुक्तं यथा भवति, हकारं शीर्षे च सबिन्दुकं यथा भवति। हूंकारेणेति समुदायार्थः। कीदृशमुच्छ्वासनिःश्वासं कुरुत इत्याह--भावाभावविवर्जितमिति। यथाक्रममिति शेषः। ज्ञानमात्रता हि प्रणवार्थः, ऊँकारं ज्ञानहृदयम् इति श्रीगुह्यसमाजवचनात्। निराभासत्वेन कायवाक्चित्तसमता हूंकारार्थः, हूंकारं कायवाक्चित्तं त्रिवज्राभेद्यसमावहम् इति तत्रैव वचनात्। अत ऊँकारसूचिताया विश्वस्य चित्तमात्रताया दर्शनाद् भाववर्जितम्। तदेव चित्तमात्रं विश्वमभावः, चित्तव्यतिरिक्तानां भावानामसत्ता, तस्यापि चित्तमात्रस्य विश्वस्य या समतापत्तिर्निराभासीभावो हूंकारः सूचितः। तद्दर्शनादभाववर्जितम्। एवं भावाभावविवर्जितम्। तत्तर्हि चित्तमात्रतायाः समतापत्तेश्च दर्शनं कीदृशम्? अत्रोपदेशः-- प्रणवमुच्चारयन्नेव वीरादुच्छ्वासेन सह ज्ञानरश्मिरेखामुद्गच्छन्तीं पश्येत्। तया स्फुरित्वा विश्वस्य बुद्धमयीकरणं बीजाक्षरमुच्चारयन् स्वदेवताकारेण तस्य विश्वस्य विभावनं चित्तमात्रतादर्शनम्। ततो हूंकारनिःश्वासेन विश्वस्य वीरे संहारः समतापत्तिदर्शनम्। एतदुभयं शनैः शनैः पुनः पुनस्तावत् कुर्याद्यावत् खेदो न भवतीत्ययमत्र तन्त्रे जापः॥ ३ ॥

अष्टम वर्ग का अन्तिम अक्षर – 'ह' कार है। उसमें बिन्दु लगाना और ऊ कार भी लगाना है। इस प्रकार वह मन्त्र 'हूँ' हो जाता है। प्रणव का ॐ अर्थ ज्ञानमात्र है। ॐ कार ही ज्ञान हृदय भी है। काय-वाक् और चित्त की समता ही 'हूँ' कार का अर्थ है। इस प्रकार 'ॐ हूँ' इस मन्त्र का धीरे धीरे जाप करते ही रहना चाहिए॥ ३ ॥

न तस्य व्रतादिनियमो यन्त्रणाधारणादिकम्।
होमयागादिकर्माणि निवर्तन्तेऽपरापरम्॥ ४ ॥
मन्त्रसंस्थानधर्मात्मा योगस्त्रिविध उच्यते।
त्रिविधेन तु ज्ञानेन भवदोषैर्न लिप्यते॥ ५ ॥
एवं योगपरो नित्यं सतताभ्यासतत्परः।
वज्रसत्त्वसमः सोऽपि मासेनैकेन सिद्ध्यते॥ ६ ॥

उस साधक के लिए कोई व्रत आदि का नियम भी नहीं है। यन्त्रों का धारण भी आवश्यक नहीं है। साथ ही होम-योग आदि भी आवश्यक नहीं हैं। इस प्रकार सभी बाह्य कर्म निवृत्त हो जाते हैं॥ ४ ॥

मन्त्र, देवता और धर्मों के कारण वह मन्त्र-योग तीन प्रकार का हो जाता है। तीन ज्ञानों से युक्त होकर जप करने से भव दोषों से वह योगी लिप्त नहीं होता॥ ५ ॥

इस प्रकार नित्य रूप से योग में स्थित होकर निरन्तर अभ्यास में लगने से वह साधक वज्रसत्त्व के समान हो जाता है, साथ ही एक महीने में सिद्धि को प्राप्त करता है॥ ६ ॥

अत्रानुष्ठानसौकर्यमाह--न तस्येत्यादिना। तस्येति जपतः, व्रतं मौनस्नानभक्ष्यादिनियमः, यन्त्रणा धारणा च प्राणवायोः। निवर्तन्त इति तन्त्रान्तरेभ्यो नानुवर्तन्ते। अपरापरमिति चार्थो गम्यते। एभ्योऽन्यदपि बाह्यकर्म सर्वं निवर्तत इत्यर्थः॥ ४ ॥

ननु जल्पनं जपः। तदत्र जपता किं केवल एव जल्पः करणीयः, किं वा मूर्तिज्ञानयोरपि भावनेत्यत आह--मन्त्रेत्यादि। तत्त्वालम्बनसमाधिर्योगः। स योगस्त्रिविधस्त्रिप्रकारः। कुतः? यस्मान्मन्त्रसंस्थानधर्मात्मा। तत्त्वद्योतकं वचनं मन्त्रः, देवतामूर्तिः संस्थानम्, मन्त्रार्थज्ञानं धर्मः। त्रिविधेन

तु ज्ञानेनेति। अनन्तरोक्तेन योगत्रयेण, न तु जल्पमात्रेण। भवदोषैर्न लिप्यत इति संसारदोषैः पापादिभिर्विमुच्यत इत्यर्थः॥ ५॥

एवमिति योगत्रयम्। नित्यमिति प्रत्यहम्। सततमिति प्रतिसन्ध्यम्। सिद्ध्यत इति सम्पद्यते। वज्रसत्त्वः श्रीहेरुकः, तेन समः सदृशः। अपिशब्दाद् वज्रडाकिनीसमः। स इति योगी। तदत्र हेरुकस्य ज्ञानडाकिनीनां मूर्तिस्तदहङ्कारेण भावनीया। मन्त्रः प्रणवहूंकारौ शनैरुच्चार्यमाणौ, तन्मध्ये च शनैरुच्चार्यमाणो मूलमन्त्रः। मन्त्रार्थज्ञानं रविसोमसम्पुटीदरगत-विद्याक्षर शीर्षे वीरबिन्दुमुत्थाप्य तदुत्थितेन रश्मिना सर्वभावानां बुद्धमयीकरणं वीरबिन्दौ च संहरणं वेदितव्यम्। एवं मन्त्रसंस्थानधर्मयोगैः षण्मासजपे कृते सदृशसिद्धौ लब्धायामलब्धायां वा सम्यक् प्रयुक्तानि विद्याक्षराणि यथास्वमवश्यं कर्म साधयन्ति॥६॥

यहाँ पर जप के अवसर पर तीन चीजें सामने आती हैं - मन्त्र, देवता का स्वरूप और मन्त्रार्थ ज्ञान- धर्म। इस प्रकार तीन प्रकार के ज्ञान से युक्त होकर ही जप करने की विधि है। इस प्रकार के कृत्य से संसार के पाप पुण्यों से योगी निर्लिप्त रहता है। नित्य का अर्थ प्रतिदिन। निरन्तर का अर्थ प्रत्येक सन्ध्याकाल में है। वज्रसत्त्व - हेरुक हैं। अपि - वज्रडाकिनी के समान। वज्रडाकिनियों की मूर्ति का ध्यान करना चाहिए। मन्त्र ऊँ हूँ। मन्त्रार्थ - रवि-सोम का सम्पुट जो नाभि में स्थित कमल के अन्दर ध्यानपूर्वक हेरुक ही भावना ही है॥ ५-६ ॥

इन्द्रवर्णसम्प्रयुक्तामादिमाक्षरभावनाम्।
स विद्यया सम्पुटितं तमाकर्षयति क्षणात्॥ ७ ॥
द्वितीयाक्षरप्रयुक्तया चिन्तया हि विभावनम्।
सर्वमपि च त्रैलोक्यं समस्तं वशमानयेत्॥ ८ ॥
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च इन्द्रः कामेश्वरस्तथा।
आकृष्यन्ते सपत्नीका ज्ञानाक्षरेण चोदिताः॥ ९ ॥
आकाराक्षरसंयुक्ताः कायवाक्चित्तसंस्थितम्।
त्रिसंयोगभावनया पिण्डाकृष्टिश्च उत्तमा॥ १० ॥

इन्द्र वर्णों के प्रयोगपूर्वक आदि अक्षर के भावना करने से तथा उसे

विद्या से सम्पुटित करने पर तत्क्षण ही उसे आकर्षित करता है - वह मन्त्र। इसी प्रकार दूसरे अक्षर आ से सम्पुटित करके जपपूर्वक भावना करने से समस्त त्रैलोक्य भी उसके वश में आ जाता है॥

इतना ही नहीं, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और कामेश्वर भी उस मन्त्र के प्रयोग से सपत्नीक वश में आ जाते हैं।

आकार अक्षर से संयुक्त होकर वह साधक जब काय-वाक्-चित्त में अवस्थित त्रिसंयोग की भावना से जप करता है तो वह उत्तम डाकिनी पिण्ड रूप से उसके सामने चराचर को ला देती है॥ ७-१० ॥

विद्याक्षराणि तत्प्रयोगांश्च सूचयितुमाह--इन्द्रवर्णेत्यादि। इन्द्रगोप इन्द्रशब्देनोक्तः। आदिमाक्षरं प्रणवः। तस्य भावनां यस्काकर्षणाय प्रयुञ्जीत। विद्येति विद्यायोगी। स योगी तं साध्यं क्षिप्रमानयति। क्षिप्रमित्यस्य निर्देशः--क्षणादिति। एतदुक्तं भवति--बुद्धडाकिन्यादियोगं कुङ्कमारुणं कृत्वा वीरभाजने कुङ्कमारुणं प्रणवं विचिन्त्य तद्बिन्दौ वीरं विन्यस्य प्रणवरश्मिभिर्वीरमरुणीकृत्य वीरादरुणरश्मिरेखाद्वयं निःसार्य एकस्या अग्रे पाशं द्वितीयस्या अङ्कुशं विचिन्तयेत्। साध्यं पाशेन कण्ठे बद्ध्वा अङ्कुशेन हृदि विद्ध्वा क्षिप्रमाकृष्यमाणं विचिन्तयेत्। मुहूर्तादाकृष्टो भवतीति॥ ७ ॥

द्वितीयेत्यादि। आलिपाठे द्वितीयमक्षरमाकारः, तस्मिन् प्रयुक्तस्तच्छीर्षमुत्थापितो वीरः। तेन भावयन्ति परमाणुशो रञ्जयन्ति स्वदेवतायोगिनः। विभावनमिति विधिसाध्यभावनम्। सर्वमपि चेति साध्याङ्ग समस्तमित्यादि। अप्यर्थो गम्यते। त्रैलोक्यमपि समस्तं वशमानयति, किं पुनः प्राणिशतं प्राणिसहस्रं वेत्यर्थः। किमुक्तं भवति-षण्णामन्यतमयोगं जवारुणं कृत्वा आकारं जवारुणं सम्पुटे विन्यस्य तच्छीर्षे च वीरं तेनैव रञ्जितं तद्रश्मिना साध्यान् प्रति परमाणु रञ्जयित्वा वशीकृतान् पादतले निपतितांश्चिन्तयेत्। सर्वे ते वशमायान्तीति॥ ८ ॥

ब्रह्मेत्यादि। कामेश्वरो मारः। एते ब्रह्मादय आकृष्यन्ते। अक्षयत्वा-दक्षरश्चित्तवज्रस्तस्य गुह्याक्षरम् अक्षराक्षरम्। अक्षरज्ञानेति क्वचित् पाठः। तत्र ज्ञानं बीजाक्षरम्, उभयस्थायिहूंकार इत्यर्थः। स चाकृष्टौ जवारुणः,

तेन चोदिताः प्रेरिताः सन्तः। कथं चोदिताः? प्रथमाकृष्टिप्रयोगवत्। हूंकारनिश्वासेनात्राकृष्टिरित्यपरे। वीरोत्थितरश्मिशुण्डाभिरत्र तन्त्रे सर्वाकृष्टिप्रयोगा इति केचित्॥ ९ ॥

उत्तमां पिण्डाकृष्टिमाह--आकारेत्यादिना। आकारश्चाक्षरश्च ताभ्यां युक्ताः आकारेण हूंकारेण वा सम्यग् युक्ताः, साधका इत्यर्थः। त्रिभिः संयोगस्त्रिसंयोगः। कायवाक्‌चित्तसंस्थितमिति साध्यस्य काये कण्ठे हृदये चावस्थितमिति। किमुक्तं भवति--षण्णामन्यतमयोगं जवारुणं कृत्वा सम्पुटगर्भे आकारस्य शीर्षे हूंकारस्य वा बिन्दौ वीरं विन्यस्य यंकारजं वायुमण्डलारूढं साध्यं वीरारुणरश्मिरेखाद्वयमुखपाशाङ्कुशाभ्यां यथाक्रमं कण्ठे बद्ध्वा हृदि विद्ध्वा च द्रुतमन्तरिक्षेणाकृष्यमाणं चिन्तयेत्। क्षणादाकृष्टो भवति॥ १० ॥

कुङ्कुम के रंग में रंगाकर बुद्धडाकिनी आदि योग करके ऊँकार का चिन्तन करके उसमें उस हेरुक की भावना करते हुए प्रणव से अनेक भिन्न रश्मियाँ निकल रही हैं यह भावना करें। इससे एक ही मुहूर्त में वह जिसकी भावना की गई हैं वह आकृष्ट हो जाता है।

आलि पाठ में द्वितीय अक्षर आकार ही है।

उसको संपुटित करके भावना करने से त्रैलोक्य भी वश में आ जाता है।

कामेश्वर - कामदेव (मार) है।

ज्ञान बीजाक्षर है। दोनों में रहने वाला 'हूँ' ही है।

हूँ कार के निःश्वास से ही आकर्षण कहा गया है।

आकार अथवा हूँकार इनके योग से।

तीन - काय-वाक्-चित्तों के योग से।

वे तीन काय, कण्ठ और हृदय में स्थित हैं।

इस प्रयोग से तत्काल ही आकर्षण हो जाता है॥ ७-१० ॥

खेकारसंयुतं रक्तं श्वेतं ध्यात्वा चतुर्मुखम्।
कपालहस्तमात्मानं शुक्राकृष्टिश्च उत्तमा॥ ११ ॥
चिकारेण समायुक्तं पीतवर्णं प्रभाश्वरम्।
ध्यात्वात्मानं हयमुखं मद्याकृष्टिश्च उत्तमा॥ १२ ॥

खेकार के साथ संयुक्त कर चतुर्मुख रक्त तथा सफेद का ध्यान करने से तथा अपने आप को हाथ में कपाल रखा हुआ है ऐसी भावना पूर्वक आकर्षण करना अत्यन्त उत्तम शुक्राकर्षण कहा गया है।

इसी प्रकार चिकार से युक्त होकर उज्ज्वल पीतवर्ष का ध्यान करते हुए अपने आप को उत्तम घोड़ा के मुख ये युक्त भावना करने से वह मद्याकर्षण कहलाता है जो अति उत्तम है॥ ११-१२ ॥

खेकारेत्यादि। एतदुक्तं भवति--खेकारेण श्वेतं चतुर्मुखं कपालपाशहस्तमात्मानं रक्तचित्तं विभाव्य खेकारशिरःस्थित-वीरोत्थित-रश्मिनलिकया साध्यगुह्यप्रविष्टया तदीयं शुक्रमाकृष्य कपाले क्रियमाणं चिन्तयेत्। क्षणादाकृष्टं भवतीति॥ ११ ॥

चिकारेत्यादि। ह्रस्वचिकारेण पीतवर्णं प्रीतप्रभमात्मानं हयमुखं ध्यात्वा चिकारशिरःस्थितवीररश्मिशुण्डया पात्रस्थं मद्यमाकृष्य भाजनं पूर्यमाणं चिन्तयेत्। क्षणात् पूरितं भवतीति॥ १२ ॥

जिस किसी को वश में करना हो उसे आकृष्ट करने के लिए सर्वप्रथम अपने आप को चतुर्मुख और आकाश के तरह व्यापक समझ कर, पाश और कपाल हाथ में लेकर आकर्षण करने से वह व्यक्ति तत्काल आ जाता है।

ह्रस्वचिकार से युक्त होकर पीतवर्णात्मक अपने स्वरूप को बनाकर पात्र में रखे हुए मद्य का आकर्षण करने से तत्काल वह पात्र भर जाता है। अथवा जिसे चाहें वह आ जाता है॥ ११-१२ ॥

रकारेण समायुक्तं रक्तवर्णं महाद्युतिम्।
चतुर्भुजं चतुर्मुखं जम्बुवक्त्रं च सुस्थितम्॥ १३ ॥
विभाव्य क्रुद्धमात्मानं रक्ताकृष्टिश्च उत्तमा।
षडक्षरसमायुक्तं षड्भिः स्थानेषु संयुतम्॥ १४ ॥
सिद्ध्यन्ति वज्रयोगिन्यो योगश्च डाकिनीगणः।
चक्षुर्द्वयं च कर्णौ च नासिका हृदयं तथा॥ १५ ॥

रकार से संयुक्त महातेज युक्त रक्त वर्णात्मक चतुर्भुज, चतुर्मुख, जम्बुवक्त्र तथा ठीक से बैठे हुए अपने आपको ध्यान कर, फिर अपने को क्रोधित कर 'रक्त' का आकर्षण करने से उत्तम रीति से वह आ जाता है। ६

अक्षरों से युक्त, ६ स्थानों में स्थित वज्रयोगिनियाँ सिद्ध हो जाती हैं। दो चक्षु, दो कान, नासिका और हृदय, जिह्वा और काय से वे संयुक्त होती हैं - जो सिद्धि को देने वाली हैं॥ १३-१५ ॥

रकारेणेत्यादि। रेफेण रक्तवर्णं चतुर्भुजं चतुर्मुखं जम्बुवक्त्रं महाद्युतिं क्रुद्धमात्मानं विभाव्य रश्मिजलूकया साध्यशरीराद् रुधिरमाकृष्यमाणं चिन्तयेत् पूर्ववदिति॥ १३-१३ १/२॥

स्वदेवतायोगेषु षडङ्गन्यास एषामेव विद्याक्षराणाम्। अतः प्रस्तावात् तमप्याह--षडित्यादिना। अनन्तरोक्तानि षड् विद्याक्षराणि षड् वर्णाः, तैः समायुक्तं चिन्तयेदिति सम्बन्धः। स्वदेवतादेहमिति शेषः। क्व समायुक्तमित्याह-षड्भिः स्थानेष्विति। षट्सु प्रदेशेष्वित्यर्थः। एवं सति वज्रयोगिन्यः सिद्ध्यन्ति, नान्यथा। वज्रो हेरुकः, योगिन्यः पञ्चडाकिन्यः। योगः श्रीहेरुकः, तस्य डाकिनी गणः। संवरे ताभिरेव योगिनीभिः सह सुखवरे सति षट् सुखस्थानेष्वित्युक्तम्। तान्येव स्थानान्याह-- चक्षुरित्यादिना। मानसं हृदयम्। चकाराज्जिह्वा कायश्च॥ १४-१५॥

वज्र - हेरुक हैं।

योगिनियाँ - पञ्च डाकिनियाँ हैं।

योग - हेरुक।

संवर - उन्हीं योगिनियों के साथ है।

सुखसंवर - ६ सुखस्थान ही हैं।

मानस - हृदय है॥ १३-१५ ॥

सिंहविक्रीडितां मुद्रां योगिनो बन्धयन्ति हि।
प्राणायामं सुयन्त्रित्वा ध्यात्वा ज्वलति तत्क्षणात्॥ १६ ॥
अकनिष्ठभुवनपर्यन्ते सप्तलोके चराचरे।
सर्वे ततो भावयन्ति न च तं बुद्ध्यन्ति हि॥ १७ ॥

सिंह के पराक्रमपूर्वक क्रीडा करने की मुद्रा को योगी लोग बाँधते हैं। बन्धन के लिए वे प्राणायाम का आश्रय लेते हैं। उसका ध्यान करने से तत्काल ही वह जल जाता है।

अकनिष्ठ से लेकर भुवन पर्यन्त अर्थात् १४ लोकों में (७ + ७ = १४), चर और अचर में भी वे सब योगी भावना करते हैं किन्तु इन्हें समझ नहीं पाते हैं॥ १६-१७ ॥

योगान्तरमाह--सिंहेत्यादि। सिंहो वीरः, तस्य विक्रीडितं यस्यां सा तथोक्ता। मुद्रामिति रविसोमसम्पुटाम्, बन्धयन्तीति बद्धां चिन्तयन्ति, तिसृभिरक्षरपङ्क्तिभिः पूर्ववत् (१.२६)। योगिन इति चतुर्देवीपरिवृतश्रीहेरुकयोगे स्थिताः। प्राणायाममिति उच्छ्वासनिश्वासौ। सुयन्त्रित्वेति सुष्ठु यन्त्रित्वा, क्रमेण सूक्ष्मीकृत्येत्यर्थः। ध्यात्वेति। तत्रैव वीरे शशिविवरद्वारदृश्ये मनः समाधाय ज्वलति तत्क्षणादिति॥ १६ ॥

वीरे स्थिरीकृतचित्तस्य धगिति ज्ञानं ज्वलति, अवभासं करोति। कियति दूरे ज्वलतीत्याह--सप्तलोक इति। पातालं भूः स्वर्गः प्रथमं ध्यानं द्वितीयं तृतीयं चतुर्थमिति सप्तलोकाः, तेषां समाहारः सप्तलोकम्, नपुंसकं त्रिभुवनवत्। त्रीणि ध्यानानि प्रत्येकं त्रिभूमिकानि, चतुर्थमष्टभूमिकम्। तस्याष्टमी भूमिरकनिष्ठम्। तेनाह--अकनिष्ठभुवनपर्यन्त इति। तत्र चराः सत्त्वाः, अचरा विमानभुवनादयः। तेनाह--चराचर इति। इदानीं तस्य वीरस्य सर्वसत्त्वैर्दृश्यतां च दर्शयितुमाह--भावयन्तीत्यादि। सर्व इति सर्वसत्त्वाः, भावयन्तीत्यभ्यस्यन्ति, स्वचित्तस्यैव तथा तथा दर्शनात्। न च तं बुद्ध्यन्तीति तत्त्वादर्शनात्, अभूतैरेव रूपैस्तस्य बालेषु प्रख्यानात्॥ १७ ॥

सिंह - वीर है।

मुद्रा -सूर्य-चन्द्रपुटित होना है।

प्राणायाम - उच्छास-निःश्वास।

चित्त जिसका स्थिर हो जाता है वह तत्काल जल जाता है - ज्ञानाग्नि से।

कहाँ जलता है - सातों लोकों में।

तत्त्व शून्य है उसे देखना इस अवस्था में संभव नहीं है॥ १६-१७ ॥

यदि सर्वे बुद्ध्यन्ति जगत्क्रीडा विनश्यति।
तस्माद् गुप्तमिदं ज्ञानमप्रकाश्यमनक्षरम्॥ १८ ॥

बुद्धयन्ति हि संबुद्धा योगनिद्रासमागताः।
ध्यायन्त एकरूपाणि पिण्डं तद्गतमानसाः॥ १९ ॥

यदि वे सब इसे जान जाय तो जगत् की यह क्रीडा नष्ट हो जाएगी। इसीलिए यह सब गोपनीय है। यह ज्ञान अप्रकाश्य तथा अनक्षर है। संबुद्ध तथागत गण ही योगनिद्रा में जाकर इसे जानते हैं। एक ही रूप में, अपने चित्त में ध्यानपूर्वक इसे साक्षात्कार करते हैं॥ १८-१९ ॥

जगत्क्रीडेति विश्वस्य क्रीडा तैस्तैराकारैर्द्वयकल्पना विनश्यतीति पूर्वमेव नष्टा स्यात्। न चाद्यापि नष्टा। यत एवं तस्मात्। इदं ज्ञानमिति ज्ञानतत्त्वमद्वयं वीराख्यम्, गुप्तमिति बालेषु गोपितम्। केन अभूतरूपसन्दर्शिनीभिर्भ्रान्तिभिः। कीदृशम्? अवाग्गोचरत्वादप्रकाश्यम्। मनोजल्पाविषयत्वादनक्षरम्॥ १८ ॥

के तर्ह्येनं परमार्थतः पश्यन्तीत्याह--बुद्धयन्तीत्यादि। हिशब्दोऽवधारणे भिन्नक्रमश्च, संबुद्धा हीति। तथागता एवेत्यर्थः। तथागतानामपि तद्दर्शनं यदि प्रकृतिसिद्धं स्यात्, तदाऽन्येषामगतिरेव स्यात्। अथ योगाधीनम्, तदा तेनैव योगेनान्येऽपि तं पश्येयुरित्यत आह-- योगेत्यादिना। एकान्तनिर्विक्षेपत्वेन निद्रासाधर्म्यान्निद्रेव निंद्रा, योगश्चासौ निद्रा च योगनिद्रा, तया समागताः संगताः सन्तः। तस्यैव निर्देशो ध्यायन्त इत्यादि। रूपाणीति सर्वधर्मान्। एकेति निराभासप्रकाशमात्रैकरसान्। पिण्डमिति तान्येवात्यन्तपिण्डनात् सुसूक्ष्मीकरणात् पिण्डं बिन्दुमात्रं सर्षपसूक्ष्ममित्यर्थः। एतेन वीरस्य मुद्रारूपं प्रसाधितम्। तद्गतमानसा इति। तत्रैव पिण्डे स्थितचित्ताः। एतेन योगनिद्रार्थः सूचितः॥ १९ ॥

विश्व की क्रीडा - द्वय की अवस्था।

यह ज्ञान - अद्वय है। जो वीर भी है।

गोपनीय है - बच्चों के लिए।

बच्चे - अज्ञान में निमग्न ही हैं।

अनक्षर - मन से परे होने से।

संबुद्ध - तथागत।

योगनिद्रा - समाधि।

पिण्ड - बिन्दुमात्र॥ १८-१९ ॥

भावयन्ति नवद्वारोद्भवान् बुद्धात्मकान् हि ते।
भक्षयेन्निर्विकल्पेन निःस्वभावेन धीमता॥ २० ॥
अङ्गुष्ठानामिकाद्वारे चिन्तामणिरवस्थितः।
अमृतात्मकं संवृत्तं नित्यसिद्धिरवाप्यते॥ २१ ॥

९ द्वारों से समुत्पन्न पदार्थों की भावना करते हैं, वे सब बुद्ध हैं इस प्रकार, और उन्हीं को निर्विकल्प रूप से निःस्वभाव होकर धीमान् (बुद्धिमान्) व्यक्ति उपभोग करते हैं।

अङ्गुष्ठ तथा अनामिका के द्वार में चिन्तामणि अवस्थित है। वह अमृतात्मक है। उसी से नित्य सिद्धि उपलब्ध होती है॥ २०-२१ ॥

एवविधानां योगानां निष्पत्तिकारणं समयमाह--भावयन्तीत्यादिना। भावयन्तीत्यधिमुञ्चेदित्यर्थः। कानधिमुञ्चेत्? नवद्वारोद्भवा येऽर्थास्तान्। कीदृशानधिमुञ्चेत्? बुद्धात्मकान् शाश्वताऽक्षोभ्यरत्नेशलोकेशामो-घस्वभावानित्यर्थः। भक्षयेत् तानेव विकल्पभक्षणार्थम्। निर्विकल्पेनेति निःशङ्केन। निःस्वभावेनेति ग्राह्यग्राहकनिराभासेन। धीमतेति प्रकाशमात्र-तानिष्ठेन, चेतसेति शेषः॥ २० ॥

अङ्गुष्ठेत्यादि। द्वारे चिन्तामणिरिति। अङ्गुष्ठानामिकयोर्मुखे चिन्तामणिरवस्थित इत्यर्थः। ततस्तेनैव तान् भक्षयेदिति भावः। कदेत्याह-अमृतेत्यादि। यदा तत्सर्वममृतात्मकं संवृत्तम्, वक्ष्यमाणविधिनेत्यर्थः। ततः किं स्यादित्याह--सिद्धिरित्यादि॥ २१ ॥

नव द्वारों से शरीर के नव छिद्रों से निकलने वाले भोगों = विषयों को बुद्धात्मक जानना चाहिए। बुद्धात्मक - शाश्वत, अक्षोभ्य, रत्नेश, लोकेश और अमोघ स्वभावयुक्त जानना चाहिए। वे ही विकल्प का भक्षण करते हैं।

निःस्वभाव - ग्राह्य ग्राहक रहित।

योग - रविसोम सम्पुट योग, बिन्दु योग।

निर्देश - कथन॥ २०-२१ ॥

॥ इति योगेश्वरीमहाविद्यायोगनिर्णयो नाम द्वितीयो निर्देशः ॥ २ ॥

द्वितीय निर्देश पूर्ण हुआ।

योगेश्वरी महाविद्येति व्याख्यातम्। तस्या योगो रविसोमसम्पुटे बिन्दुयोगः, स येन प्रकारेण निरूप्यते--सिंहविक्रीडितमित्यादिना (२.१६), तस्य निर्णयः, तस्य निर्देशः कथनम्।

॥ गुणवत्यां महामायातन्त्रटीकायां द्वितीयो निर्देशः॥

तृतीयो निर्देशः

अथापरान् सम्प्रवक्ष्ये समयोत्तमसाधनान्।
द्रव्यगणान् भक्ष्यमाणान् सर्वज्ञफलदायकान्॥ १ ॥
येन भक्षणमात्रेण सिद्ध्यन्ते गूढमातरः।
दन्तिनो नुस्तुरङ्गस्य तथा गोः कुक्कुरस्य च॥ २ ॥
महापलसमायुक्तं पञ्चज्ञानामृतं तथा।
अष्टमितश्चतुर्दशीं यावदसह भाविताः॥ ३ ॥
सप्तदिनानि जम्बूके स्थापिता अथ चोद्धृताः।
तानि सिद्धार्थमाना वै गुलिकाः पञ्च कारयेत्।
गोपितं चान्यतन्त्रेषु सम्यग् बुद्ध्वा महाफलम्॥ ४ ॥
यावत् तथा चाष्टमितश्चतुर्दशीं
जम्बूकमध्येऽसह सम्प्रयोज्य।
शिवाङ्गमध्ये त्वथ भूतरात्रौ
स्थाप्यानि सिद्धार्थफलानि तानि॥ ५ ॥
द्रव्याणि वै पञ्च तथा प्रमाणं
यथा मयैव त्विह तन्त्र उक्तम्।
अन्येषु तन्त्रेषु च नोक्तसर्वं
संगोपितं बुद्ध्य महाफलानि॥ ६ ॥

अब, इसके बाद ज्ञान साधना के उत्तम योगी गणों के लिए द्रव्यों का वर्णन करुंगा, जिन्हें भक्षण करने से साधक सर्वज्ञ-फलों को प्राप्त करता है। जिसके भक्षण मात्र से गूढ - गुप्त मातायें प्रकट हो जाती हैं। हाथी, घोड़े, गाय तथा कुक्कुर एवं मनुष्य के मांस से भी संयुक्त जो पञ्चज्ञानामृत है, उसे अष्टमी

से लेकर चतुर्दशी तिथि तक निरन्तर भावित करके सात दिन तक जामून के पेड़ के नीचे गड्ढे में रखकर फिर उसे वहाँ से निकालकर उन्हें सिद्ध करके पाँच गोली बनायें। यह अन्य तन्त्रों में गुप्त रखा गया है इसे जानकर जो इसका प्रयोग करता है वह महाफल देने वाला कहा गया है। अष्टमी से लेकर चतुर्दशी पर्यन्त जामुन के पेड़ के नीचे गड्ढे में रखकर बारम्बार उसे मन्त्रों से भावित करके श्मशान में अमावस्या को रखकर उसे फिर भावित करने से सिद्ध हो जाता है। द्रव्य भी पाँच हैं जिन्हें मैंने इसी तन्त्र में बताया है। यह सब अन्य तन्त्रों में नहीं बताया गया है। इसका फल विशिष्ट है यह जानकर ही इसे सुगुप्त किया गया है॥ १-६ ॥

अपरानिति अनन्तरोक्तेभ्यो नवभ्योऽन्यान्। द्रव्याणि च तानि गणाश्च गणैकदेशत्वात् प्रत्येकमिति द्रव्यगणाः तान्। सर्वज्ञेति सर्वज्ञत्वम्, तदेव फलम्, तद्दायकान्॥ १ ॥

येनेति येन द्रव्यगणेन। गूढमातरो वज्रडाकिन्यः॥ २ ॥

महत्त्वेन समायुक्तं महागुणेन भूषितं महापलम्। तथाशब्दः समुच्चये। चतुर्दशीमित्यादि। अष्टमिह्रस्वो जम्बूकदीर्घश्चेह छान्दसः। असहेति प्रत्येकम्। भाविता इति पञ्चामृतेन लिप्तशोषितानि कृत्वा, सप्तदिनानि॥ ३-४ ॥

कृष्णाष्टमीमारभ्य यावत्कृष्णचतुर्दशीमिति। एवं कृते पश्चात् संप्रयोज्येति एकीकृत्य। भूतरात्रौ शिवाङ्गमध्ये स्थाप्यानीति स्थापनीयानि तानीति। तथा भावितस्थापितानि द्रव्याणि सिद्धार्थफलानीति सर्षपप्रमाणानि॥ ५ ॥

कानि पुनस्तानि द्रव्याणीत्याह--पञ्चेति। पञ्चपललानीत्यर्थः। तथा प्रमाणमिति। उपलक्षणत्वात् तथाविधानं च। इह तन्त्रे उक्तमिति साकल्येनोक्तम्। अत एवाह--अन्येषु तन्त्रेषु चेत्यादि। नोक्तसर्वमिति न सर्वमुक्तम्। ततः किमित्याह--संगोपितमिति। किं कृत्वा गोपितमित्याह--बुद्ध्वा महाफलानीति। महाफलानि तानि ज्ञात्वेत्यर्थः। कुतो महाफलानि? पञ्चानां स्कन्धानां पञ्चज्ञानभावितानां शिवाङ्गस्थितानां संपुटपात्रे स्थितानां वीरसारूप्यगमनात्॥ ६ ॥

गूढमातर – वज्रडाकिनीगण।

भावित – पञ्चामृत के द्वारा जो शोणित से पूरित हुआ करता है।

अष्टमी – कृष्ण पक्ष अष्टमी।

वे पाँच द्रव्य – पाँच मांस हैं।

पाँच ही क्यों हैं – क्योंकि पञ्च स्कन्धात्मक होने से।

इनके बोध से पञ्च ज्ञान भी उपलब्ध हो जाते हैं॥ १–६ ॥

अथात्र साधनं येन चित्तपद्मं विभावयेत्।
चतुर्देवीसमायुक्तं रक्तवर्णसमप्रभम्॥ ७ ॥
नीलोत्पलप्रभं पूर्वे बुद्धबिम्बोपशोभितम्।
दक्षिणे पीतवर्णं च पश्चिमे तु सितप्रभम्॥ ८ ॥
उत्तरे रक्तवर्णं तु ज्वालामालाकुलं तथा।
त्रिनेत्रं सुन्दरं ध्यायेच्चतुर्वक्त्रं चतुर्भुजम्॥ ९ ॥

पूर्वे देवीं त्रिनेत्रीं वामे खट्वाङ्गघण्टे दक्षिणतस्तथा वज्रकपालहस्तामिति भावयेत्। दक्षिणे देवीहस्ते त्रिशूलं च रत्नं च पताका च जम्बुकश्च। पश्चिमे देवीहस्ते धनुश्च बाणश्च विश्वपद्मं च कपालं च। उत्तरे देवीहस्ते खड्गश्च पाशश्च डमरुश्च कपालं च॥ १० ॥

कायवाक्चित्तवज्रं तं तत्र मध्ये विचिन्तयेत्।
कपालमथ खट्वाङ्गं धनुर्बाणधरं तथा॥ ११ ॥
आदिमन्त्रेण संयुक्तं ध्यात्वा ज्वलति तत्क्षणात्।
तथा योगी साधयते द्रव्यं सिद्धिफलप्रदम्॥ १२ ॥

अब, इसके बाद मैं वह साधन बताने जा रहा हूँ जिसके प्रयोग से चित्त पद्म की भावना की जाती है। वह चार देवियों से समायुक्त है जो रक्तवर्ण से समुत्पन्न हुआ है।

पूर्व में, नीलोत्पल से समुद्भुत है तथा बुद्धबिम्बों से सुशोभित है। दक्षिण में पीत वर्ण तथा पश्चिम में सफेद वर्ण से युक्त है।

उत्तर दिशा में रक्तवर्ण है जो ज्वालाओं के मालाओं से घिरा हुआ है। उसमें सुन्दर तीन नेत्रों से संयुक्त सुन्दर मुखमण्डल है, साथ ही चार हाथ भी हैं ऐसा ध्यान करें। पूर्व में तीन नेत्रों वाली देवी का, वाम में खड्वाङ्ग तथा

घण्टा धारण की हुई देवी, दक्षिण में वज्रकपालहस्ता की भावना करें। देवी के दक्षिण हाथ में त्रिशूल, रत्न, पताका और जम्बुक हैं यह ध्यान करें, पश्चिम दिशा में अवस्थित देवी के हाथों में धनु, बाण, विश्व कमल तथा कपाल का ध्यान करें, उत्तर में अवस्थित देवी के हाथों में खड्ग, पाश डमरु और कपाल हैं ऐसी भावना करें।

काय, वाक् और चित्त वज्र को उनके मध्य में अवस्थित हैं ऐसा चिन्तन करें। और कपाल, खट्वाङ्ग साथ ही धनुर्बाण धारण करती है ऐसा चिन्तन-भावना करें।

इस प्रकार ध्यान करके आदि मन्त्र ॐ से संयुक्त है ऐसा ध्यान करते ही तत्काल ही वह जल उठता है। उसके बाद योगी सिद्धि-फलप्रद द्रव्य को प्राप्त कर लेता है। वह सिद्ध हो जाता है॥ ७-१२ ॥

अथेत्यादि। अथेति अनन्तरम्। अत्र तन्त्रे यत् साधनम्। येन कर्मणा भगवान् समण्डलः साध्यते आराध्यते, तद्भवति तत्प्रभूयत इत्यर्थः। विभावयेत् पद्ममिति। निराभासबोधिचित्तभावनया गगनसमीकृते जगति वज्रमयीं भूमिं विचिन्त्य घोरश्मशानाष्टकमध्यस्थकूटागारान्तरालकमलमष्टदलं चतुर्दलं वा चिन्तयेत्। रक्तवर्णसमप्रभमिति रक्तं रक्तप्रभं च। मनसेति वीराख्येन सुविशुद्धमनोबिन्दुना कर्णिकावस्थितेन स्फुरित्वा च चतुर्षु दिग्दलेषु स्थितेन संलक्षितम्। चतुर्देवीसमायुक्तमिति। पूर्वदलादिबिन्दुभ्यो यथाक्रमं वज्रमणिपद्मकर्मकुलेशानामुत्कुलानां च प्रत्येकमनन्तानां स्फुरणे सति तत्र संहारजनिताभिर्वज्ररत्नपद्मविश्वडाकिनीभिस्तेष्वेव दलेष्वध्यासितम्॥ ७ ॥

बुद्धबिम्बोपशोभितमिति। बुद्धो वज्रधरः, तस्य बिम्बं मूर्तिः श्रीहेरुकः, तेन मण्डलनायकेनोपशोभितम्। ताभिरेव देवीभिर्वक्ष्यमाणगीतिसंचोदिताद् मूलमनोबिन्दोर्बीजद्वयाकारपरिणतात् पञ्चकुलेश-उत्कूलस्फुरणव्याप्तासु दिक्षु तत्संहारोच्छ्वसित-बीजद्वयपरिणामेन बुद्धडाकिनीपरिरब्धेन भगवता श्रीहेरुकेण उपशोभितम्। तत्पुनर्बुद्धबिम्बं कीदृशमित्याह--पूर्वेत्यादि। चतुर्वक्त्रमिति चतुर्मुखम्। चतुर्भुजं त्रिनेत्रमिति सुगमम्। कस्मिन् मुखे किं वर्णमित्याह--पूर्वमुखे नीलोत्पलवर्णम्, दक्षिणमुखे पीतम्, पश्चिममुखे

सितम्, उत्तरमुखे रक्तवर्णमित्यर्थः। यश्च मूले मुखे वर्णः, स एव देहे वर्ण इति प्रसिद्धमेतत्। ज्वालामालाकुलमिति। प्रलयानलसमानानां ज्वालानां माला आकुला अस्येति तथोक्तम्॥ ८-९॥

वाम इत्यादिना देवीनां चिह्नमाह--वामे खट्वाङ्गघण्टे अस्या इति वामखट्वाङ्गघण्टाम्, दक्षिणतस्तथा वज्रकपाल-हस्तामिति, वज्रं च कपालं च ते हस्तयोरस्या इति तथोक्ताम्। पूर्व इति पूर्वदले। देवीमिति। एतदुत्तरत्रापि सर्वत्र सम्बन्धनीयम्। इह तावद् वज्रडाकिनीम्। उत्तरत्र यथाक्रमं रत्नडाकिनीं पद्मडाकिनीं विश्वडाकिनीं च। दक्षिण इत्यादि। त्रिशूलं च रत्नं च पताका च जम्बुकश्च हस्ते यस्या इति तथोक्ताम्। पश्चिमेनेति। सप्तम्यर्थे तृतीया। धनुश्च बाणश्च विश्वपद्मं च कपालं च, तद्योगाद् धनुर्बाणविश्वपद्मकपालिनीम्। खड्गेत्यादि। खड्गश्च पाशश्च डमरुश्च कपालं च, तानि हस्तेष्वस्या इति तथोक्ताम्। एता अपि ज्वालामालाकुलाश्चतुर्वक्त्राश्चतुर्भुजास्त्रिनेत्राः, प्रधानानुवर्तित्वाद् गुणानाम्। अत एव भगवन्मुखानुसारेण पूर्वा नीलवर्णा,दक्षिणा पीता, पश्चिमा सितवर्णा, उत्तरा श्यामा। मुखमप्यासां तथैव, किन्तु मूलमुखमासां देहवर्णम्। देहवर्णस्य भगवन्मुखस्य स्थाने नीलमुखमासाम्॥ १० ॥

भगवतः स्थानचिह्नान्याह--कायेत्यादिना। कायवाक्-चित्तवज्रः श्रीहेरुकः, तं विचिन्तयेत्। तत्रेति रक्तकमले। मध्य इति कर्णिकायाम्। कपालमित्यादि। तस्य रक्तकमले। मध्य इति कर्णिकायाम्। कपालमित्यादि। तस्य हस्तेष्विति शेषः। यथैव श्रीहेरुकस्तथैव बुद्धडाकिनी, किन्तु रक्तवर्णा रक्तमूलमुखा च। सा चास्य संमुखी भुजद्वयेन गाढमाश्लिष्टकन्धरा॥ ११ ॥

समयं विना न सिद्धयः, ततः समयप्रज्वालनमाख्यातुमाह--आदीत्यादि। आदिमन्त्रः प्रणवः, तेन संयुक्तं समयद्रव्यं ज्वलतीति सम्बन्धः। ध्यात्वेति यथोपदेशं ध्याते सति। द्रव्यमिति समयद्रव्यम्। साधयत इति निष्पादयति। कीदृशं निष्पादयति? सिद्धिफलप्रदम्। उक्तं च श्रीमति गुह्यसमाजे--ॐकारं सर्वमन्त्राणां ध्यात्वा ज्वलति तत्क्षणात् (१६.३८) इति॥ १२ ॥

बुद्धबिम्ब - बुद्ध = वज्रधर। उनका बिम्ब अर्थात् - हेरुक।

ज्वालामाला - प्रलयकालीन अग्नि के तरह की ज्वालाओं से घिरा हुआ।

कायवाक्चित्तवज्र - हेरुक।

आदिमन्त्र - प्रणव = ॐ। ॥ ७-१२ ॥

योगाश्च सिद्धयोगाश्च सहसाऽऽस्था प्रवर्तते।
अन्तर्धानाददृश्योऽसौ साहस्रैकावभासकः॥ १३ ॥
हरति सर्वसिद्धानां प्रभुङ्क्ते देवकन्यकाः।
गङ्गावालुसमान् बुद्धान् सवज्रालयसंस्थितान्॥ १४ ॥
स्वहस्तस्थामलकवत् पश्यति वज्रचक्षुषा।
गङ्गावालुसमान् क्षेत्रान् कायवाक्चित्तलक्षणम्॥ १५ ॥
भावयन्ति हि सर्वात्म स्थितं चित्ताख्यनाटकम्।
तत्त्वानुत्तरसंसिद्धं बुद्धबोधिस्थितं शिवम्॥ १६ ॥

उक्त साधक के लिए तत्काल सहजरूप से योग, सिद्ध योग उपस्थित होते हैं - यह साधक उनमें दृढ हो जाता है। अन्तर्ध्यान आदि योगसिद्धि उसके लिए प्रकट होते है। हजारों लोकों को वह भासित कर सकता है।

विद्याधर आदि सिद्धों की कन्याओं को तत्काल ही वह साधक प्राप्त कर लेता है - आकर्षित कर लेता है। जो गङ्गा के बलुका के समान असङ्ख्य हैं तथा वज्रगृहों में अवस्थित हैं।

वज्रचक्षु से वह योगी सभी को हस्त में स्थित आँवले के तरह ही देखता है, साथ ही अनन्त क्षेत्रों को भी, जो गङ्गा बालुका के समान हैं, देखता है। वे निश्चय ही काय, वाक् चित्त लक्षणात्मक हैं। वह योगी सर्वात्मा होकर चित्त नामक नाटक गृह में स्थित सभी पदार्थों को देख लेता है। जो वस्तुतः अनुत्तर ज्ञान से सिद्ध है, बुद्ध के बोधि (ज्ञान) में स्थित है तथा कल्याण कारक है॥ १३-१६ ॥

ज्वालनानुशंसामाह--योगा इत्यादि। अत्र योगिन एव योगाः। योगिनो योगिन्यश्च सिद्धाः सन्तीति प्रत्ययो लोकस्य प्रवर्तते, प्रभावदृष्टान्तस्य ज्वालनस्य दर्शनादित्यर्थः। अन्तर्धानादिसिद्धेः प्रभावमाह--अन्तरित्या-

दिना। साहस्रैकावभासक इति। चतुर्द्वीपकानां लोकधातूनां सहस्रं साहस्रो लोकधातुः, तस्यैकस्यावभासकः, आधिपत्येन परार्थक्रियया च॥ १३॥

सर्वसिद्धानामिति विद्याधरादीनाम्, कन्यामिति योज्यम्। वज्रालयस्तेषामेव बुद्धानां बुद्धक्षेत्रं संस्थितम्, तेषामेव पर्वत्। सह तासामिति सवज्रालयसंस्थितान्॥ १४ ॥

चक्षुर्वज्रं वज्रचक्षुः, दिव्यचक्षुरभिज्ञेत्यर्थः। कायवाक्-चित्तलक्षणमिति। कायचित्तानि इन्द्रियज्ञानानि, वाक्चित्तानि मनोविज्ञानानि, सजल्पत्वात्। तेषां लक्षणं स्वरूपम्, भावयन्तीति मनसा पश्यन्ति। कथं पश्यन्ति? सर्वात्म, सर्वात्मनेत्यर्थः। किमेतदित्याह--चित्तेत्यादि। चित्ताख्यमिति वज्रचित्तम्, परचित्तज्ञानमित्यर्थः। आत्मनः स्वेदवताकारेण भावनं योगतन्त्रे तदिह नाटकम्, नाटकसाधर्म्यात्। तस्मादुद्भवोऽस्येति। यथोक्तम्, समयद्रव्यसाधने स्तोकमुक्तम्।

अयं विषयो गुह्यसमाजेप्युक्तमेवेति तत एव ज्ञातव्यः।

श्रावकप्रत्येकबुद्धानामपीदृशं शिवमस्ति, ततो विशिनष्टि--तत्त्वेति। सर्वप्रपञ्चरहितं ज्ञानमित्यर्थः। बोधिसत्त्वानामपीदृशं ज्ञानमस्ति, तत्तु बुद्धज्ञानेन सोत्तरम्। ततो विशेषणार्थमाह--अनुत्तरमिति। नास्मादुत्तर-मस्तीत्यनुत्तरम्॥ १५-१६ ॥

योगी ही यहाँ योग है।

योगी तथा योगिनियाँ दोनों सिद्ध हैं ऐसा लोक मानता है।

सर्वसिद्ध - विद्याधर।

चक्षुर्वज्र - दिव्यचक्षु - अभिज्ञा ही है। श्रावक, प्रत्येक बुद्धों के लिए भी यह कल्याणकारक है।

तत्त्व - सर्वप्रपञ्चरहित ज्ञान ही है॥ १३-१६ ॥

अत्र श्लोकः

रूपाणि मुद्राणि च न्यासचिह्नं
द्रव्याणि ध्यानानि च भावनानि।
नानाविधा उपायाश्च निदर्शितानि
उक्तानि देवीमनईप्सितानि॥ १७ ॥

तन्त्रं गृहे यस्य भवेत नित्यं
धारेत वाचेत विभावयेत।
न तत्र रोगा न जरा न मृत्यु-
विघ्नानि देव्यः परिरक्षयन्ति॥ १८ ॥

रूप, मुद्रा, न्यासचिह्न, द्रव्य, ध्यान और भावनायें, वे अनेक प्रकार के उपाय बताए गए है, वस्तुतः वे सभी देवी के मन के द्वारा ईप्सित हैं।

यह तन्त्र, अर्थात् यह महामाया तन्त्र जिसके घर में रहता है, जो व्यक्ति इसे धारण करता है या वाचन (पढ़ना) करता है तथा भावना (चिन्तन) करता है। उस घर में रोग, जरा और मृत्यु नहीं होते। समग्र विघ्नों से देवी उस घर (लोगों को) की रक्षा करती है॥ १७-१८ ॥

अत्र श्लोक इति। यथोक्ते तन्त्रार्थे संग्रहश्लोकः।

रूपाणीति देवतादीनां वर्णसंस्थानि। मुद्राणीति मुद्रणानि। षडङ्गन्यासकुलिशाब्जशोधनादीनि, तस्यैव चिह्नमिति कपालखट्वाङ्गादि। द्रव्याणि समयवस्तूनि। ध्यानानीति। ध्यैचिन्तयाम्, जपा इत्यर्थः। भावनानि मण्डलचक्रादिसमाधयः। नानाविधा उपायाः कर्मप्रसरहीनसिद्ध्यादयः। एतानि सर्वाणि निदर्शितानि सूचितानि। इयता सर्वेण किं कृतमित्याह-- देवीत्यादि। देव्या महामायया यानि मनईप्सितानि हृदयेप्सितानि तान्युक्तानि॥ १७ ॥

तन्त्रपरिग्रहेऽनुशंसामाह--तन्त्रमित्यादिना श्लोकेन। तन्त्रं महामायाख्यम्। गृहे यस्येति यस्य गृहे। भवेत नित्यमिति नित्यं तिष्ठते। धारेतेति धारयेत। वाचेतेनि वाचयेत, पठेदित्यर्थः। विभावयेतेति विभावयेत्। विघ्नानीति विघ्नाः॥ १८ ॥

रूप - देवताओं का स्वरूप।

मुद्रा - चिह्न = षडङ्ग-न्यास - कुलिश-कमल-आदि। और कपाल, खड्ग आदि।

द्रव्य - समय वस्तु आदि।

ध्यान - जप।

भावना - मण्डल, चक्रादि समाधि।

नाना उपाय – सिद्धि आदि।

निदर्शित – सूचित।

मन ईप्सित – महामाया देवी को अच्छा लगने वाले।

तन्त्र – महामाया।

महावज्रडाकिनियों का मत – सिद्धान्त। अर्थात् समस्त योगिनीतन्त्र।

वह महागुह्य है।

सोपचार समाप्त हुआ हैं – समाप्त – पूर्ण।

सोपचार – साध्य – साधन विधि ही उपचार है।

उसके साथ ही यह तन्त्र पूर्ण हो गया है॥ १७-१८ ॥

इति महावज्रडाकिनीनां मतं महागुह्यं समाप्तं सोपचारम्।

॥ इति तृतीयो निर्देशः ॥

॥ इति महामायातन्त्रं समाप्तम्॥

यह महामाया तन्त्र पूर्ण हुआ।

महत्यश्च ता वज्रडाकिन्यश्च तासाम्, मतम् उपरिगृहीतः सिद्धान्तः, समस्तं योगिनीतन्त्रमित्यर्थः, तस्य रहस्यं सारम्। किं तदित्याह-- महागुह्यमिति। आदौ परमगुह्यमित्युक्तम्, अन्ते तदेव महागुह्यमिति पर्यायान्तरेणोक्तं महामायाख्यंतन्त्रमित्यर्थः। तत् समाप्तं निष्ठितम्। सोपचारमिति। साध्यसाधनार्थो विधिरुपचारः, सह तेन वर्तत इति सोपचारम्, न तेन शून्यमित्यर्थः।

महामायातन्त्रे विवृततिमिति कृत्वा गुणवती-
मवाप्तं यत्पुण्यं परिणतमृगाङ्कद्युति मया।
जिनानामात्मैकः कुलिशधरभावो भवतु मे
ततोऽत्यन्तं दुःखक्षयमखिललोकं च लभताम्॥

इति गुणवत्यां महामायातन्त्रटीकायां तृतीयो निर्देशः।
गुणवतीनाम महामायातन्त्रटीका
महापण्डितरत्नाकरशान्तिपदानां समाप्तेति।

न्यौपानेकाशीनाथेन रत्नाकरमहत्पदाम्।
मार्गमाधृत्य संक्षेपात् कृता व्याख्या यथामति॥

शुभं भूयात्

महामायातन्त्र

गद्य-पद्यानुक्रमणी

टीकाकारोधृतवचनानुक्रमणी

खमध्ये शशिसंकाशं	१८, व. त.
चित्तमात्रमिदं यदुत	८, द. भू. ३२
जिनानामात्मैकः कुलिश	४४,
डै वैहायसमगने	३, धा. पा. ६६८ भ्वा.
तन्मूर्त्तिमुद्रानुसृतैक	१,
तिष्ठते निश्चलं विद्या	१८, व. त.
धकारादिक्षकारान्त	१७, स. त.
ध्यायते परमं तत्त्व	१८, व. त.
नाभिमध्ये स्थितो देवः	१८, व. त.
नासाग्रे सर्षपं चिन्तेत्	१८, गु. स. ६. ८-९
निर्विकल्पसुखं तस्माद्	१६, अ. प्र. धा.
प्रतिपदमतस्तत्र	१,
प्रशान्तमचलं श्रेष्ठं	१६, अ. प्र. धा.
बाह्यो न विद्यते ह्यर्थो	८, लं. सू. १०. १५४-१५५
बुद्धबिम्बं विभावित्वा	१८, गु. स. ६. ८-९
भावयेज्ज्ञानपदं रम्य	१८, गु. स. ६. ८-९
मध्यस्था तु अकाराली	१७, सं. त.
महामायातन्त्रे विवृत(ति)	४४
रुचितो बहवः स्वयं	१,
वासनालुठितं चित्त	८, लं. सू. १०. १५४-१५५
विकल्पदुर्ग व्यतीत्य	१५, अ. प्र. धा.
विविधः सुगतेन बोधि	१,
सर्वाकाशचर(री) सिद्धि	३,
सवते शुक्ररूपेण	१८, व. त.
हूंकारं कायवाक्चित्तं	२६, गु. स. ११. ३

सन्दर्भग्रन्थ सूची

१- अश्वघोष, **बुद्धचरितम्**, वाराणसी : चौखम्बा विद्या भवन, २००४ ।
२- अश्वघोष, **सौन्दरनन्द**, वाराणसी : चौखम्बा विद्या भवन, २००४ ।
३- असंग एवं मैत्रेयनाथ, **महायानसूत्रालङ्कारः**, वाराणसी : बौद्ध भारती, १९८५ ।
४- आप्टे, वामन शिवराम, **संस्कृत-हिन्दी कोश**, नई दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास, १९९६ ।
५- उपाध्याय, बलदेव, **बौद्धदर्शन मीमांसा**, वाराणसी : चौखम्बा विद्या भवन, पञ्चम संस्करण, १९९९ ।
६- उपाध्याय, भरतसिंह, **बौद्धदर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन**, नई दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास, १९८१ ।
७- कमलशील, **प्रज्ञापारमिता वज्रच्छेदिका टीका**, वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा-संस्थान, १९९० ।
८- गपि, यशोविजय, **जैन तर्क भाषा**, अहमदाबाद : सरस्वती पुस्तक भण्डार, १९३८ ।
९- गुप्त, मोक्षाकर, **बौद्ध तर्क भाषा**, वाराणसी : प्राच्य विद्या संस्थान, १९८५ ।
१०-चन्द्रकीर्ति, **प्रसन्नपदा**, वाराणसी : बौद्ध भारती, १९८३ ।
११- चन्द्रधर शर्मा (सं०), **सौगत सिद्धान्तसारसंग्रह**, वाराणसी : चौखम्बा विद्या भवन, १९५४ ।
१२- त्रिपाठी, रामशंकर, **सौत्रान्तिक दर्शनम्**, वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा-संस्थान, १९९० ।
१३- त्रिपाठी, रामशंकर, **बौद्धदर्शन प्रस्थान**, वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा-संस्थान, १९९७ ।
१४- दिङ्नाग, **प्रज्ञापारमिता पिण्डार्थः**, दरभंगा : मिथिला विद्यापीठ, १९६० ।
१५- दिव्यवज्र वज्राचार्य (अनु०), **सद्धर्मलंकावतारसूत्रम्**, ललितपुर : लोटस रिसर्च सेन्टर, १९९३ ।
१६- द्वारिकादास शास्त्री (सं०), **अपोहवादः**, वाराणसी : बौद्ध भारती, १९९२ ।
१७- धर्मकीर्ति, **प्रमाणवार्त्तिक**, वाराणसी : चौखम्बा विद्या भवन, १९९४ ।

१८- धर्मकीर्ति, **न्याय बिन्दु**, वाराणसी : बौद्ध भारती, १९८४ ।

१९- नागार्जुन, **मध्यमकशास्त्रम्**, वाराणसी : बौद्ध भारती, १९८३ ।

२०- नागार्जुन, **विग्रहव्यावर्तनी**, वाराणसी : बौद्ध भारती, १९८४ ।

२१- न्यौपाने, काशीनाथ, **बौद्धागमरहस्यम्** (अप्रकाशित)

२२- न्यौपाने, काशीनाथ, **मीमांसा पदार्थ विज्ञानम्** , वाराणसी : दिलीपकुमार पब्लिशर्स, १९९४ ।

२३- न्यौपाने, काशीनाथ, **लाहिडी क्रियायोग संहिता**, वाराणसी : सत्यलोक, २००५ ।

२४- नरेन्द्रदेव, **बौद्ध धर्मदर्शन**, पटना : बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, १९७१ ।

२५- परशुराम वैद्य (सं०), **अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता**, दरभंगा : मिथिला विद्यापीठ, १९६० ।

२६- पेमा तेन्जिङ्ग (सं०), **प्रज्ञापारमिता वज्रच्छेदिकासूत्रम्**, वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा-संस्थान, १९९४ ।

२७- परशुराम वैद्य (सं०), **प्रज्ञापारमिता हृदयसूत्रम्**, दरभंगा : मिथिला विद्यापीठ, १९६० ।

२८- पाण्डेय, गोविन्द चन्द्र, **बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास**, लखनऊ : हिन्दी समिति, १९७६ ।

२९- प्रधान, भुवनलाल, **नेपालमा बौद्धधर्म**, काठमांडु : नेपाल राजकीय प्रज्ञा प्रतिष्ठान, १९९८ ।

३०- बुद्धघोष, **विशुद्धिमग्गो**, महाराष्ट्र : विपश्यना विशोधन विन्यास, १९९८ ।

३१- मल्लिषेण, **स्याद्वादमञ्जरी**, गुजरात : श्रीपरमश्रुतप्रभावकमण्डल, १९९२ ।

३२- **महावग्गो**, महाराष्ट्र : विपश्यना विशोधन विन्यास, १९९८ ।

३३- मिश्र, विरेन्द्रप्रसाद, **दर्शनशास्त्र : एक परिचय**, काठमांडु : श्रीमती श्यामा मिश्र, १९८३ ।

३४- मिश्र, ज्ञानश्री, **निबन्धावली**, पटना : काशी प्रसाद जायसवाल शोध संस्थान, १९८७ ।

३५- मैत्रेयनाथ, **अभिसमयालङ्कारकारिका**, दरभंगा : मिथिला विद्यापीठ, १९६० ।

३६- राधेश्यामधर द्विवेदी (सं०), **बौद्ध विज्ञानवाद : चिन्तन एवं योगदान**, वाराणसी : केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा-संस्थान, १९८३ ।

३७- वसुबन्धु, **अभिधर्मकोश**, इलाहाबाद : हिन्दुस्तानी एकेडेमी, १९८४ ।

३८- वसुबन्धु, **विज्ञप्तिमात्रतासिद्धिः**, वाराणसी : सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, १९९२ ।

३९- शर्मा, चन्द्रधर, **बौद्धदर्शन और वेदान्त**, इलाहाबाद : विजन विभूति प्रकाशन,

१९८६ ।
४०- शान्तिदेव, **बोधिचर्यावतारः**, वाराणसी : बौद्ध भारती, १९८८ ।
४१- सिंह, अमर, **अमरकोशः**, काठमांडु, रत्न पुस्तक भण्डार, २००८ ।
४२- स्थिरमति, **विज्ञप्तिमात्रतासिद्धिः स्थिरमतिभाष्य**, वाराणसी : सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, १९९२ ।
४३- हरिभद्र, **अष्टसाहस्त्रिका आलोकटीका**, दरभंगा : मिथिला विद्यापीठ, १९६० ।
४४- हरिभद्र, **षड्दर्शन समुच्चय**, वाराणसी : चौखम्बा विद्या भवन, १९७९ ।
45. Akira Hirakawa, *A History of Indian Buddhism*, Delhi: Motilal Banarsidass, 1993.
46. Bapat, P.V., *2500 Years of Buddhism*, Delhi: Ministry of Information and Broadcasting, 1956.
47. Bapat, and Chatterjee, *An Introduction to Indian Philosophy*, Calcutta: University of Calcutta, 1984.
48. Dasgupta, S.N., *A History of Indian Philosophy*, Delhi: Motilal Banarsidass, 1973.
49. Gellner, David N, *Monk, Householder and Tantric Priest*, Delhi: Cambridge University Press, 1992.
50. Kewal Krishan Mittal (Editor), *Vijnanavada (Yogachar) and its Tradition*, Delhi: Motilal Banarsidass, 1993.
51. Murti, T.R.V., *Central Philosophy of Buddhism*, Delhi: Motilal Banarsidass, 1954.
52. Pandey, G.C., *Studies in Mahayana*, Varanasi: Central Institute of Higher Tibetan Studies, 1993.
53. Takakusu, Junjiro, *The Essentials of Buddhist Philosophy*, Delhi: Motilal Banarsidass, 1949.
54. Wayman, Alex, *Buddhist Insight*, Delhi: Motilal Banarsidass, 1984.

Other books of related interest published by us:

1. ***A Concise Dictionary of Indian Philosophy*** by *John Grimes*
2. ***The Aphorisms of Siva*** trans. with exposition and notes by *Mark S.G. Dyczkowski*
3. ***A Journey in the World of the Tantras*** by *Mark S.G. Dyczkowski*
4. **स्पन्दप्रदीपिका** ***Spandapradīpikā*** (Sanskrit) — A Commentary on the Spandakārikā by Bhagavadutpalācārya Edited by *Mark S.G. Dyczkowski*
5. ***Vijnana Bhairava : The Practice of Centring Awareness*** trans. and commentary by *Swami Lakshman Joo*
6. ***Abhinavagupta's Commentary on the Bhagavad Gita : Gītārtha Saṁgraha*** trans., introd. & notes by *Boris Marjanovic*
7. ***Stavacintāmaṇi*** of Bhaṭṭa Nārāyaṇa with the Commentary by Kṣemarāja **स्तवचिन्तामणि**: Translated from Sanskrit with Introduction and Notes by *Boris Marjanovic*
8. ***Aspects of Tantra Yoga*** by *Debabrata SenSharma*
9. ***An Introduction to the Advaita Saiva Philosophy of Kashmir*** by *Debabrata SenSharma*
10. **आगम-संविद्** ***Āgama-Saṁvid*** (Sanskrit) डॉ० कमलेश झा
11. ***The Khecarīvidyā of Ādinātha*** : A critical edition and annotated translation of an early text of ***haṭhayoga*** by *James Mallinson*

11. ***The Khecarīvidyā of Ādinātha*** : A critical edition and annotated translation of an early text of ***haṭhayoga*** by *James Mallinson*
12. ***Shaivism in the Light of Epics, Puranas and Agamas*** by N.R. Bhatt
13. ***The Hindu Pantheon in Nepalese Line Drawings*** : Two Manuscripts of the Pratiṣṭhālakṣaṇasārasamuccaya compiled by *Gudrun Buhnemann*
14. ***Selected Writings of M.M. Gopinath Kaviraj***
15. **शिव-संबोध और गंगा प्रतीक** - डॉ० रमाकान्त पाण्डेय
16. ***Śrī Tantrālokaḥ*** (Sanskrit Text with English Translation) (3 vols.) by *Gautam Chatterjee*
17. ***Fundamentals of the Philosophy of Tantras*** by *Manoranjan Basu*
18. ***Yantra Images*** Compiled and edited by *Dilip Kumar*
19. ***White Shadow of Consciousness***: Recognition of the actor by *Gautam Chatterjee*
20. ***The Stanzas on Vibration*** by *Mark S.G. Dyczkowski*
21. **Tantrasāra** (Text with English Translation) by *Gautam Chatterjee.*

डॉ० काशीनाथ न्यौपाने संस्कृत वाङ्मय के विशिष्ट साधक हैं। इन्होने वाराणसी में रहकर प्रसिद्ध विद्वान् स्वामी योगीन्द्रानन्द जी के सान्निध्य में वेदान्त, न्याय, मीमांसा, बौद्धदर्शन, बौद्धतन्त्र, शैवदर्शन, शाक्ततन्त्र, पालि, प्राकृत एवं जैन दर्शन का गहन अध्ययन किया है। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय से पूर्वमीमांसा एवं बौद्धदर्शन में स्वर्णपदक सहित आचार्य करने के बाद विद्यावारिधि उपाधि प्राप्त किया है।

संस्कृत लेखन में सिद्धहस्त डॉ० न्यौपाने द्वारा लिखित मीमांसा पदार्थ विज्ञानम्, मीमांसातर्कभाषा, मीमांसानयभूषनम्, बौद्धदर्शनभूमिः, बौद्धप्रमाणशास्त्रम्, वज्रयानमहाशास्त्रम्, सौत्रान्तिकदर्शनम्, वज्रयोगसाधना, बौद्धागमरहस्यम्, दर्शनसंदोहः, तारिणीवरिवस्या, लाहिडी क्रियायोग संहिता आदि मौलिक कृतियाँ संग्रहणीय ग्रन्थ के रूप में प्रसिद्ध हैं जो विभिन्न विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में भी निर्धारित हैं।

नेपाल संस्कृत विश्वविद्यालय के पूर्व रिसर्च डाइरेक्टर डॉ० न्यौपाने सम्प्रति नेपाल संस्कृत विश्वविद्यालय, काठमाण्डु में बौद्धदर्शन विभाग के रूप में कार्यरत हैं।


ISBN 81-86117-27-X

₹ 225